

बामाचरण मित्र की कहानियां

संपादन
शत्रुघ्न पांडव

अनुवाद
शंकर लाल पुरोहित

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

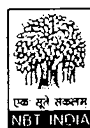
बामाचरण मित्र की कहानियां

संपादन

शत्रुघ्न पांडव

अनुवाद

शंकर लाल पुरोहित



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

अनुक्रम

आवरण : परेश चौधुरी की पेंटिंग पर आधारित

ISBN 978-81-237-4083-6

पहला संस्करण : 2003

पहली आवृत्ति : 2012 (*शक* 1934)

Original Title : Bamacharan Galpa Sambhar *(Oriya)*
Translation : Bamacharan Mitra Kee Kahaniyan *(Hindi)*

₹ 60.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II

वसंत कुंज, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित

भूमिका

'बामाचरण मित्र की कहानियां' ओड़िया के विशिष्ट कथाकार बामाचरण मित्र (1915-1975) की चुनी हुई कहानियों का संकलन है। गहन चिंतन और जीवन-प्रेमी स्रष्टा के रूप में स्वातंत्र्योत्तर ओड़िया कथा साहित्य में बामाचरण मित्र का अवदान उल्लेखनीय है। कथाधारा के उत्तर काल में उनका देहांत ओड़िया कथा के लिए वेदनाप्रद दु:संवाद था। कम से कम चौथाई सदी की निरंतर साधना में उन्होंने ओड़िया कथानक को अपूर्व विन्यास, रसपूर्ण विदग्ध शैली और महत्तम भाव-विभूति से समृद्ध किया है। प्रखर हृदयवत्ता और सूक्ष्म मार्मिक भावावेग से रससिद्ध बामाचरण की कहानियां आनंद-विषाद की रसघन अभिव्यक्ति के साथ-साथ अंतर्जगत का तत्व, दर्शन तथा मानवीय करुणा में सिक्त कर देती हैं। गहन आत्मीयता में वे व्यक्ति और विश्व को जोड़ती हैं। उनकी कहानियों में सिर्फ मानव की असहायता, तृष्णा और स्मरणीयता का वर्णन नहीं, वरन ये मार्जित रुचि और विचार के साथ उसकी आत्मसत्ता को आलोकदीप्त और महत्तर करने की प्रेरणा देती हैं।

व्यक्तिगत जीवन में अति निष्कपट, नीतिनिष्ठ, स्वाभिमानी बामाचरण ऊंचे प्रशासनिक पद पर थे, मगर जीवन संग्राम में अनेक संकटों का सामना उन्हें करना पड़ा। अंतिम दिनों में वे अस्वस्थ हो गए। परंतु विश्वसाहित्य, दर्शन और ज्ञान संबंधी अनुसंधित्सुता उन्हें कर्मठ और सृजनशील बनाए रखने में समर्थ हुई। महान कथाकार महापात्र नीलमणि साहू के शब्दों में, "उनके ज्ञान की सीमा व्यापक थी। वैसी ही गहरी थी। वे हर क्षेत्र में ज्ञान के अधिकारी थे। क्रिकेट से लेकर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, क्लासिकल म्यूजिक से टायनबी तक, सरवेंटिस के डानक्विक्सोट से लेकर अरविंद के 'लाइफ डिवाइन' तक...हर बात में वे समान आग्रह व्यक्त करते (बामाचरण विशेषांक/इस्ताहार–जनवरी 1987)।" युवावस्था में अच्छे खिलाड़ी एवं तैराक थे। परंतु पचास के बाद उनका स्वास्थ्य गिरता गया।

हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए मार्क्स, गांधी, विवेकानंद के आदर्श और आभिमुख्य के प्रति वे आस्थावान थे। चिंतन में वे भारतीयता के पक्षधर थे। व्यक्तिगत जीवन में वैरागी वैष्णव थे। विभिन्न धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण था। धार्मिक संकीर्णता से काफी ऊपर उठकर थे। नौकरी में तबादला

होता रहा, मगर भुवनेश्वर में जब रहना पड़ा, सांस्कृतिक-साहित्यिक चर्चा का वलय गोपीनाथ महांति को केंद्र बना कर निर्मित हुआ। इसमें वे, नीलमणि साहू, अखिल मोहन पटनायक, शांतनु आचार्य, कृष्ण प्रसाद मिश्र, चंद्रशेखर रथ, हरिहर दाश आदि शामिल होकर बराबर चर्चा किया करते।

एक शताब्दी (1898-1998) की समृद्ध कथा परंपरा के दौरान अनेक मोड़ आए, वर्णाढ्य वैचित्र्य से परिपूर्ण। अनेक परीक्षण, प्रयोग, कला-कौशल मिलेंगे। इसी में स्वातंत्र्योत्तर कालखंड भी है। बामाचरण ने प्राक स्वाधीनता युग में लेखन शुरू किया। पर परवर्ती पच्चीस वर्ष तक वे सक्रिय रहे हैं। यह ओड़िया के अनेक सारस्वत साधकों के उत्कर्ष का युग है। गोपीनाथ महांति, राजकिशोर राय आदि कथाकारों के उन्मेष का युग है। इस प्रवाह में बामाचरण मित्र, महापात्र नीलमणि साहू, मनोज दास, किशोरी चरण दास, अखिल मोहन पटनायक, चौधरी हेमकांत मिश्र, अच्युतानंद पति आदि शामिल हुए। इसमें और भी अनेक सशक्त कथाकार शामिल हुए। स्वातंत्र्योत्तर काल का उड़ीसा, स्वतंत्र भारत और युद्धोत्तर विश्व इनकी कथाभूमि है। ये सभी प्रायः उच्चशिक्षित हैं, प्राच्य-पाश्चात्य कथाधारा और परंपरा में सचेत हैं। अनेक शास्त्रों में निपुण, विज्ञान-दर्शन, मनोविज्ञान संबंधी नवीन ज्ञान तथा परिवर्तिन समाज, आर्थिक व्यवस्था एवं अंतर्राष्ट्रीय दृश्यपटल से परिचित अपनी शैली में कला प्रवणता की दृष्टि से सजग स्रष्टा ठहरे।

सन् 1950 में प्रकाशित 'कीर्तियश्य' बामाचरण की पहली रचना है। शुरू में पश्चिमी लेखकों के अनुसरण पर 'कीर्तियश्य' और 'नरछंछाण' जैसी अपराध संबंधी कहानियां लिखीं। क्रमशः वे मौलिकता में सिद्धहस्त होते गए। भाषा में अकृत्रिम परिपक्वता और भावों में व्यापकता तथा वैविध्य ने उन्हें बहुत शीघ्र युवा कथाकार और गंभीर रचनाकार की मर्यादा दिला दी। थोड़े-थोड़े अंतर पर 'स्वप्नसिद्ध', 'असीम', 'बट महापुरुप', 'महापुरुष बाग' आदि संकलत आते गए। कहानी के साथ रम्य रचना में भी वे खूब मंजे। दर्शन, तत्व एवं अपने अनुशीलन और वक्तव्य के लिए कहानी में पूरा रास्ता न मिला तो रम्य रचना में उतरे। कहानी में कहीं-कहीं रम्य रचना का प्रवेश इसी का प्रमाण है। उनकी कई कहानियों को रम्य रचना भी कह सकते हैं।

जीवन के परिणत पर्याय में कथा समग्र को एकत्रित करने की मानसिकता से 'मित्रकल्प', 'मित्रगल्प' और 'मित्रस्वल्प' तीन संकलनों की कल्पना की थी। बामाचरण के देहांत (12 फरवरी 1975) के बाद पहले दो खंड तो सन् 1979 में और तीसरा 1989 में तीन विशिष्ट प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हुए। साथ में दो कुछ हट कर 'जीवन ओ कला' (निबंध संकलन) तथा 'चंद्र ओ चंपा' (उपन्यास) भी सामने आए। पिछले तीन-चार दशकों में अन्य कथाकारों की तरह वे चर्चा के केंद्र में कभी नहीं रहे। फिर भी विभिन्न धारा की कम से कम दस कहानियां और

'चंद्र ओं चंपा' उपन्यास विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल हैं। तथा ये पाठकों के बीच खूब चर्चित रहे। मानस (फरवरी 1976) तथा इश्ताहार (जनवरी 1987) ने बामाचरण विशेषांक प्रकाशित किए। इसके अलावा बामाचरण की कहानियों तथा रम्य रचनाओं पर कई शोध कार्य हुए हैं। वैसे समीक्षाएं यत्र-तत्र ही हुई हैं। फिर भी बामाचरण की प्रतिभा अभी तक अनालोचित ही है।

कहानी के वर्णन और भाषा विन्यास में उन्होंने प्रचलित परंपरा को अपनाया है। हालांकि तत्कालीन घटना अथवा अनुभूति को कभी कहानी का विषय नहीं बनाया, बल्कि व्यापक अंतरंग दृष्टि रखी, कहानी गहन और व्यापक संदर्भ लेकर चलती है। बामाचरण का तत्वनिष्ठ मनन, विश्व की अनेक श्रेष्ठ कृतियों के अवगाहन, वेदोपनिषद से समकालीन वैज्ञानिक तक तथा दार्शनिक भावसत्य तक का परिचय देता है। इन कहानियों में मौलिक दृष्टि और ताजगी निरंतर बनी रहती है। दृष्टि भंगिमा उतनी ही वैज्ञानिक, उच्चस्तरीय चिंतन और सौंदर्य दृष्टि अधिक रसमय हुई। इस अवगाहन और मननशीलता के साथ कहानी तत्व तथा रस का समाहार बौद्धिकता और हृदयवत्ता का समन्वय, पारंपरिक मूल्य व सांप्रतिक रुचि का सम्मिश्रण उनका अपना वैशिष्ट्य है। एकदम मामूली घटना और उसकी क्रिया-प्रक्रिया से लेकर ज्ञान-विज्ञान के गूढ़ सिद्धांत के प्रयोग और प्रासंगिकता को ले, कहानी रची गई है। आंचलिक घटना को लेकर लिखने पर भी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिफल सामने आता है, वृहत्तर विश्व दृष्टि का परिचय मिलता है। मौलिक जीवन दृष्टि, प्रस्तुतीकरण में स्वतः स्फूर्तता, प्राणवंत वर्णन कौशल बामाचरण के कथानक को भीड़ से अलग कर देता है। गहन जीवन बोध, माटी से जुड़ाव के अंतराल में एक अपार्थिव और महत्तर स्पंदन के प्रति आकुलता स्पष्ट दिख जाती है।

इनकी कहानी के उपादान, कथावस्तु और क्षेत्र पारिवारिक पट्टभूमि से लेकर नौकरी-चाकरी तक परिव्याप्त हैं। उनका कथा पुरुष गृहस्थ, पिता, पुत्र, लेखक, हाकिम, नौकरी आम आदमी का रूप लेकर उतरता है। कभी प्रथम पुरुष तथा कभी तृतीय पुरुष के रूप में उनकी द्रष्टा आंखें घटना का परिवेषण करती हैं। कहानियों में व्यक्ति का कर्म, प्रवृत्ति, ईश्वर-निरीश्वर भाव विश्लेषित होते हैं। कहीं युद्ध, प्रेम, नारी स्वतंत्रता, नैतिकता, पाप-पुण्य, पारिवारिक प्रेम और जगत का वैचित्र्य भी महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति में उसके दिव्य-अदिव्य भाव का संघर्ष, कथित अपराधी में स्थित मानवीयता, सर्वोपरि व्यक्ति मानव में प्रवृत्तिगत रूपराग, अहंकार, छल का आरोप, उसके साथ मानवीय करुणा, सहृदयता की बात भी खोज लाते हैं। मलिन और अधोगामी, द्वंद्व-दुविधाग्रस्त आदमी में मानवीयता का स्फुरण होता है। पारिवारिक पट्टभूमि, परस्पर आलाप भरी घटनाएं कहानियों में खूब हैं। इनमें विविधता भरपूर है। कभी-कभी विषय की स्फूर्ति कहानी को आहत कर देती है। तत्व-दर्शन अधिक हो जाता है। मामूली पात्रों को छोड़ दें, कई पात्रों में धीमता, विद्गता मिलती है।

मानो लेखकीय सत्ता उन्हें ढांपे है। फिर भी बामाचरण, पाठक को हृदय से निकली धारा कुछ और महत्तर सदिच्छा और संभावना की प्रत्याशा दे रहे हैं।

बामाचरण के भावों का विस्तार, चरित्रचित्रण और मर्म पर विचार करें तो उनके अनेक क्षितिज उभर कर आते हैं। शिशु-किशोर-किशोरी के अजीब विचार, जिज्ञासु मन की दुनिया का चित्रण, वयस्कों की दुनिया पर प्रकाश, कभी ऐश्वरीय भाव एवं सृष्टि का रहस्य खिल उठे हैं। इस धारा में 'स्वप्नसिद्ध' और 'मिमी' को लेकर तीन कहानियां काफी लोकप्रिय हुईं। 'मिमीर साहित्य शिक्षा' में शिशु के खयाली स्वप्न और कल्पना जगत को जीवंत किया गया है। ईश्वर के रूप की अनन्य व्याख्या में जिज्ञासा को व्यक्त किया गया है। हिसाबी रूप में कवि, कल्पना में ईश्वर को स्वीकार करने को राजी नहीं। विश्व के हर कौतुकी शिशु में मिमी दिख जाती है। इसके अलावा 'भूगोल शिक्षा' तथा 'सभ्यता' में किशोर शिशु जगत का रहस्य खुलता जाता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, भय के बावजूद शिशु में गहरा स्नेह, आत्मीयता सदा होती है, यह बात 'स्वप्नसिद्ध' में उजागर हो जाती है। शिशु की निष्पाप चेतना और स्वर्गीय चमक में एक सेतु बार-बार स्पष्ट हुआ है।

व्यक्ति में आडंबरहीन सरलता को बामा बाबू ने खूब आत्मीयता और स्पष्टता से उकेरा है। साथ में थोथा आभिजात्य, असहायता के निदर्शन बहुधा मिल जाते हैं। 'महापुरुष बाग' में सरल मन संगीत का पुजारी मोची रामाराव गणतंत्र भारत की निरीह अबोध जनता के प्रतीक हैं। बड़े-बड़ों के झूठे भाषण से खिंचकर पश्चिमी विलास में डूबे महापुरुष बाग क्लब में प्रवेश करने की विडंबना भरी परिणति भोगते हैं। यह कामना, शठता, स्वेच्छाचार में डूबे शासन की दानवी लालसा के आगे रामाराव दंपति सहज बलि हो जाते हैं। रामाराव के कारुण्य में भारत की पीड़ित और प्रतारित मानवात्मा का कारुण्य, सौंदर्यबोध और निरीहता की मृत्यु प्रकट हो रही है। कहानी में निम्न मध्यवित्त परिवार के अभाव में दिलमोहिनी लड्डू खाने की इच्छा का मार्मिक चित्रण हुआ है। मगर 'पाषाण के प्राण' में नायक अभावों की बलि पर मानवीयता की बलि चढ़ा देता है। अभाव हो पर ठगने का मन नहीं बना पाता। चेतना निष्पाप रहे तो चित-लोक में पाषाणी प्रतिमा जीवंत दिखती है। यह बामाचरण की ईश्वर-चेतना का प्रतिफलन है। दारिद्र्य का अपना क्षेत्र है, स्वाभिमान है। इस छलनाहीन जीवन को कृत्रिमता घेर लेती है, विडंबना बन जाती है। इस विडंबना और मोहभंग की कहानी है 'निमंत्रण'। इस धारा में 'स्मृतिरत्नाकर' का शहरी धनाढ्यता के ठाठ और मोहभंग की कहानी में एक मामूली चरित्र बनते हैं, टूट जाते हैं। अकपट अकृत्रिम जीवनधारा, अंतरंग आत्मीयता, मानवीयता की महिमा के प्रति इस धारा के कहानीकार हैं बामाचरण।

जाति-धर्म को लेकर संघर्ष से सांप्रतिक विश्व और भारत त्रस्त है। यहां मंदिर, मस्जिद को लेकर खून की होली चलती है। कुशभद्रा नदी के इस पार कुसुमपुर

के राधावल्लभ के अनुरक्त राम प्रधान और उस पार अहमदपुरिया रहीम खां का युगों का संपर्क और उसमें गहरी आत्मीयता है। लेकिन मामला रक्तरंजित स्थिति पर टिकता है। उनका बेटा नव और अब्दुल एक-दूसरे के हाथों मरते हैं, मगर आत्मीयता का बंधन और सहावस्थान की संभावना वहां भी खत्म नहीं होती। अगली पीढ़ी प्रेम व मैत्री में बंधी रहती है। दो खंडों में इस धारा की दो कहानियां हैं—'होली' और 'धर्मक्षेत्र'। कुसुमपुर और महमदपुर को हम पृथ्वी के दो धर्म वाली धरती मान लें। सहावस्थान और सहृदयता की यह विशाल धरती है—इन भावों के खिलने में, संबंध और आत्मीयता के अनेक क्षितिज खुलते हैं बामाचरण की कलम से। 'मानव और दानव', 'धरित्री और धरित्री' जैसी कहानियों में बाह्य प्रकृति और मानव की अंतःप्रकृति को उन्होंने सुंदर ढंग से उकेरा है। अंदर हिंसा से भरी पाशविकता और कामना का घिनौना रूप उसे ध्वंस की ओर ले जाता है। मगर उसमें अमृतपूर्ण महती सत्ता और विश्व प्रकृति उसे उत्तीर्ण करती है—यह कहानी का अंतःस्वर है। आसुरीभाव का उत्पाटन और दिव्य भाव का उदय बामाचरण के कथानक में दार्शनिक व संन्यासी की तरह लगता है।

जीवन और जगत में बहुविध विचित्रता बामाचरण की अंतर्दृष्टि से आलोकित हुई है। मनुष्य और प्राणी जगत के क्रिया-प्रक्रिया में वे एक और ही उपलब्धि तथा भावसत्ता तक पहुंचते हैं। 'जीवन और जीविका' कहानी में मामूली चनाचूर बेचने वाले में जिजीविषा, और सृजनशीलता को वे साकार करते हैं। 'अमृतस्य पुत्राः' में मातृत्व का वैचित्र्य है। उधर 'हाइड्रोजन बम' में निरीह लोगों का विनाश है—यह बौद्धिक विरोधाभास का चिंतन करता है। 'कस्ते पुत्रः' कहानी में निरीह असहायता और करुण जीवन जीने का एक भिन्न पर्व शुरू होता है। 'मुर्गी पालन' अथवा 'आगंतुक' में प्राणी जगत में स्नेह, सुरक्षा देने वाली मां का कमनीय जगत दिख रहा है। प्राणी जगत में विश्व जननी मातृ सत्ता की उपलब्धि होती है। अन्य कई कहानियों में भी मां की यह शक्ति स्पष्ट है। 'एक मध्यवित्त परिवार में मूसा' में मूसे को लेकर अजीब खेल होता है। व्यक्ति की हिंसा, स्नेहभाव, जीवन जीने का और मृत्यु का काफी बड़ा दृश्य नाटकीय ढंग से उद्घाटित होता है। ऐसी कहानियों में विविधता, वैचित्र्य का रूप लेती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में गांव का बदला परिवेश छुपा नहीं। 'बट महापुरुप' में धर्म-विश्वास का प्रतीक बट है। इसे लेकर क्षमता की लड़ाई और सांप्रदायिक संघर्ष का मार्मिक चित्र दिया है। संस्कृति और सहावस्थान की जड़ें उखड़ जाती हैं, धर्म स्वार्थी लोगों के हाथ में खिलौना हो गया। बामाचरण के इस कथानक की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

हास्य और व्यंग्य इन कहानियों की एक और विशेपता है। रम्य, रोचक और रसग्राही ढंग से कहानी रखकर व्यक्ति की असहायता, कारुण्य और ठगी का रूप भी स्पष्ट किया गया है। उधर आनंद-अनुराग-आमोद का परिप्रकाश इस हास्य-व्यंग्य

के कारण अधिक जीवंत हो गया है। इससे बामाचरण की वाक-वैविध्य बुद्धि चातुरी, श्लेष, आ ंग्य, कौतुक हासप्रियता स्पष्ट हुई है। कभी-कभी फेंटेसी में इनकी अपूर्व कल्पना और शक्ति सूचित होती है। सियार, रात के अंतिम पहर में हुआं-हुआं करते हैं। कुछ ने दूर से पूछा—क्या हुआ?...और दूर पर उत्तर दिया—हत्या हुआ...हत्या हुआ...कहानी के प्रभाव को ध्यान में रख बामाचरण ने तथ्य, प्रज्ञा और भावावेग में, रसबोध में, तर्क निष्टा के समन्वय में कहानी को बहुआयामी और बौद्धिक बना दिया, वर्णन में तथाकथित अलंकरण या उपमा-बिंब आदि का कोई आग्रह नहीं। लोक-प्रचलित भाषा, गीता-उपनिषद आदि के प्रसंग लाकर प्रस्तुत किए हैं। कहानी कला की दृष्टि से कोई कथित परीक्षण में भी वे उतने नहीं जुटे। कहने का जादुई तरीका, गहन आत्मनिमज्जन, घटना का सूक्ष्म पर्यवेक्षण ही इन कहानियों को आकर्षक बना देता है।

इनमें हर भाव और दर्शन के अंतराल में मानव का पारस्परिक संपर्क, आत्मीयता, आचरणगत वैचित्र्य है। सबसे महत्व की बात इस आत्मीयजगत के साथ वृहत्तर सत्ता के साथ संपर्क है। व्यक्तिगत उल्लास में महाजागतिक घटनाओं का संपर्क अथवा मानव अपराध व विकृति के साथ महायुद्ध या प्रलय के संयोग की बात स्पष्ट करते हैं। इस दृष्टि से वे अनन्य हैं। बार-बार असीम का स्वर या रहस्यवाद की ओर दृष्टि मिलती है। नीतिबोध और शुचि बोध की प्रतिष्ठा पर जोर दिया गया है। अपने समय में यह उनका अनूठा स्वर है। एक अध्यात्मिक भारत और संत्रास मुक्त विश्व की कल्पना में व्यक्ति व्याकुल दिखाई देता है।

इन कहानियों में समकालीनता है, परंतु समयोत्तीर्ण भाव भी काफी है। सामाजिक प्रतिबद्धता की ओर उन्मुख कथाकार मनुष्य के शोधन की आशा रखता है। व्यक्ति में महत्तम और आलोकदीप्त सोपान की ओर उन्नत होने, संस्कृतिवान और पूर्णतम होने की अभीप्सा बार-बार दिखती है। उपकूली उड़ीसा की सामाजिक दृष्टि के साथ ये कहानियां विषम, और भावना की दृष्टि से भारतीय पृष्ठभूमि की हैं, मानवीय करुणा और जीवन के प्रति गहन संप्रीति में ये कहानियां आंचलिकता से ऊपर उठ जाती हैं।

चुनी हुई कहानियों का यह संकलन बनाते समय बामाचरण की कहानियों की समग्र विशेषता, विचित्रता और कलाकौशल पर विशेष ध्यान चला गया। एक पृष्ठभूमि और भावधारा को लेकर कई सफल कहानियां मिलीं, पर एक ही लेनी पड़ी। बामाचरण की कथा-प्रतिभा को परिचित कराने में नेशनल बुक ट्रस्ट ने इस योजना को हाथ में लिया, निर्णायक मंडल धन्यवाद के पात्र हैं। संप्रति प्रकाशक मिलते नहीं, लोकप्रिय कहानियों का एकत्र समाहार कठिन है। इस संकलन से कथाकार एवं कथा प्रेमी श्रद्धा एवं संप्रीति प्राप्त करेंगे।

—शत्रुघ्न पांडव

मिमी की साहित्य शिक्षा

जीवन बाबू के मन में बड़ी तकलीफ है। उनकी इकलौती बेटी, बहुत बुद्धू है। पढ़ाई में मन नहीं, किताब लेकर बैठे तो ऊंघने लगती है। कुछ पूछो तो बुद्धू-सी देखती रहती है।

आधा घंटा हुआ, जीवन बाबू बकझक कर रहे हैं। यह समझाने के लिए कि "यह हृदय उंड़ेल दिया आज आप के चरणों में हे नाथ।" पर मिमी आं किए बड़ी-बड़ी आंख से पीती जा रही है। मानो वह सब समझ गई। बीच-बीच में उसके घुंघराले केश हवा में उन आंखों पर पड़ रहे हैं। इससे समझने में बाधा पड़ रही है। इस कारण कुछ खीझ है। मिमी का भाव देख जीवन बाबू और उत्साह में समझाते जा रहे हैं। कुछ समय में, वे बड़ी-बड़ी आंखें क्रमशः संकुचित होने लगीं। जी जान से कोशिश कर ऊपरी पलक ऊंची किए है। घंटे भर में भावार्थ समझा दिया है। संतोष से मुस्कराकर पूछा, "समझी तू?"

मिमी फिर सिर के बाल हाथ से पीछे कर बाएं से दाहिने सिर झुका चुकी है। पर आंखों में डर खिल रहा। ऊंघती आंखें बड़ी हो गईं।

जीवन बाबू ने कड़ककर पूछा, "समझ गई तो बेवकूफ की तरह क्या देख रही है? बता क्या समझी?"

मिमी ने थूक निगला, कहने लगी, "नाथ यानी स्वामी या भगवान, जिन्होंने हमें बनाया है। वे बहुत भले आदमी हैं। किसी से कुछ नहीं कहते, किसी पर नाराज नहीं होते, बहोत भले हैं, कोई आप की..."

"गोबर समझी! भौंदू कहीं की! घंटे भर दिमाग लगाया और समझी ये कि भगवान एक आदमी है! 'बहुत' बोल नहीं पाती, 'बहोत' कहती है! और नन्हीं बच्ची बन जा। पांचवीं में एक साल फेल हुई, जरा भी लाज नहीं..."

मिमी सहमकर पीछे हटकर बोली, "ना...ना...भगवान...एक...भगवान एक..."

"क्या भगवान एक?" जीवन बाबू ने गरजकर पूछा, "भगवान क्या है? पापा ने क्या कहा? भगवान क्या?" तभी मिमी की लाडली शंकी दौड़कर गोद में बैठ कर माऊं...माऊं करने लगी।

जीवन बाबू बाबू को गुस्सा आ गया। शंको को गोद से उठाकर फेंका। रसोई की ओर देखकर आवाज दी, "पचास बार कहा, घर में बिल्ली-फिल्ली मत रखो! पढ़ाई में परेशानी होगी। रात दिन उसी के साथ खेलती है! स्कूल से आकर घर में पांव रखते ही किताबें फेंक पहले शंकी को खोजो! ससुरी, मां के गुण वाली बेटी बनी है। मरी नहीं! देखो वो शशधर की लड़की, कैसे जोर-जोर से पढ़ती है? लिंगराज बाबू की लड़की क्लास में फर्स्ट आती है! मेरे भाग्य में तू लिखी थी? इस वंश में एक भी कोई नहीं जो नाम रख सके! भाग्य...भाग्य! ससुरी परीक्षा में खाते फाड़कर नाव बना बहा आई। मरी क्यों नहीं...मर...जा..."

पिछली वार्षिक परीक्षा के दौरान बारिश आ गई। पानी बरामदा लांघकर कमरे तक आ गया। मिमी का मन थिर न रह सका। परीक्षा दी, यह बात याद ही नहीं रही। धीरे-धीरे वह परीक्षा कक्ष से बाहर आ गई। कांपी को चीरकर नाव बना पानी में बहा दिया। डोंगी थिरकती हुई वह गई! घर आने के बाद याद आया। पिता का डर! डर के मारे ज्वर हो आया। कई दिन में छूटा। मिमी उस बार फेल हो गई। जीवन बाबू को पता चला तो खूब पीटा। आज वही यादकर गुस्सा दूना हो गया। थप्पड़ लगाकर बोले, "बिना समझाए छोड़ने वाला नहीं। आज तेरी रहेगी या मेरी रहेगी! खाना बंद! कितनी ही रात हो रोना बंद।"

रसोई से आवाज आई, "लड़की को और न पढ़ाना! जब भी पढ़ाते हो पिटाई करते हो! हमने इसे क्या खाना-पीना दिया है जो आस करें? पढ़ाई आती है?"

उत्तेजना में वे बोले, "क्या कहा? मैं पढ़ाना नहीं जानता?"

घंटा भर समझाया। सब समझने की तरह सिर हिलाया। मैं क्या नहीं जानता कि मां बेटी बराबर हैं! लाडली बनाकर बिगाड़ दिया।

रसोई से आवाज आई, "बस, हो गया, अब चल खाना खा।"

मिमी घुटने मोड़कर उठ रही थी। जीवन बाबू गरजे, "खबरदार! जल्दी बता, वरना छोड़ूंगा नहीं। बता, भगवान क्या है? इतना समझाया, बता!"

सरलार्थ बताने में भगवान बीच में आ गए। पहले ही अटपटा कर दिया। मिमी आंसू पोंछ भगवान को गाली देने लगी। यह मुंहजला, मुझे तो बापू से गाली खिला रहा है! वह भगवान को समझाने ही वाली थी। तभी मुंहजला कहने पर पुरी में जगन्नाथ जी की बात याद आ गई। जगन्नाथ को देख नानी से कान में पूछा था, "नानी! जगन्नाथ क्या मुंहजले हैं?" नातिन की बात सुनकर आंसू भर आए। नानी उसे चूमने लगी, "हां, वे मुंह जले भगवान हैं" मिमी को वह बात याद आ गई, मानो अंधेरे में रोशनी मिल गई। आंखें चमक उठीं!" मगर नानी की बात याद कर आंखें छलछला आईं। सब भूलकर कह उठी, "पापा? नानी ने खत लिखा है गांव में उसे मेरी याद आती है, उसे ले आओ पापा!"

"छोड़ तेरे जगन्नाथ! हां, भगवान है जगन्नाथ! आगे फिर?"

नानी के विरह में विकल मन को फिर सरलार्थ की ओर ले आई। मिमी को इसमें कुछ समय लगा। आंसू रोककर वह कहने लगी, "कवि यहां कहते हैं...कहते हैं...कि...हमारी नानी..." मिमी सम्हाल न सकी, फफक उठी।

जीवन बाबू ने दो धौल जमा दिए "हट! मेरी किस्मत देखो! कि इसे घंटों समझाया! सब कुछ भूल गई? स्कूल मास्टर कह रहे थे कि मिमी क्लास में ध्यान नहीं देती। अजीब उत्तर देती है। अच्छा विपरीत शब्द का मतलब बता। बोल, बोलती है या दूं थप्पड़। बेहया! लाज नहीं! रोती है! 'सुख' का विपरीत 'खसु'? रोना बंद कर, बता। क्या समझाया। कवि कहते हैं...हां...

मिमी ने आंसू पोंछे, "कवि कहते हैं..."

इतना बोलकर मन ही मन पूछा, "कवि कौन है? क्या कहने चला? सब फिर गड्डमड्ड हो गया। उधर शंकी म्याऊं-म्याऊं कर बेचैन कर रही है। मन ही मन शंकी को गाली देने लगी। जलमुंही, पढ़ाई हो जाने दे, तुझे लात जमाऊंगी। मगर आज यह पढ़ाई कब होगी? हे प्रभु! हे जगन्नाथ! ये जलमुंह कवि ने क्या कहा है याद करा दो!"

तभी बाहर किसी ने आवाज दी, "बाबू हैं?" जीवन बाबू चिढ़ गए, "नहीं हैं।" बाहर से कहा, "बड़े बाबू ने याद किया है। जल्दी चलें, जरूरी काम है।"

जीवन बाबू ने खीझ में भरकर कमीज पहनी। कहा, "अभी आध घंटे में आया। जो समझाया, लिखकर रखना। दूसरी प्रश्नमाला का पांचवां सवाल बनाकर रखना। इतना न किया तो तेरी वो गत बनाऊंगा कि बस..."

जल्दी-जल्दी चल पड़े। कचहरी में घंटा भर तो लग ही गया। घर के बरामदे में धीमे से जूते खोल पांव रखा, खिड़की से झांका कि मिमी सो रही है या पढ़ रही है? पता नहीं चला। बड़े भाई और छोटे भाई दोनों कांपी पर लिख रहे हैं। कागज के काफी टुकड़े नीचे पड़े थे। मिमी ने पांव पसारकर शंकी को गोद में बिठा लिया था। थपकी दे रही थी—म्याऊं...म्याऊं सो जा...मेरी म्याऊं सो जा..."

अंदर जाकर कहा, "मिमी, यही पढ़ाई हो रही है?"

वह चौंक उठी। बापू को देख शंकी को छोड़ दिया। डरकर सिहर गई, छोटे-से बच्चे के मन में सवाल उठा? यह सरल गणित समझ नहीं आया, "लेखक अपना पांडित्य दिखाता है या बच्चे की बुद्धि देखता है? तू खुद करके देख ये सवाल!"

जीवन बाबू ने सवाल पढ़ा।

मैं घर से डेलांग गांव एक सभा में पैदल जाऊंगा। वहां शाम सात बजे पहुंचना है। अगर तीन मील प्रति घंटे के वेग से जाऊं तो समय से आधे घंटे पहले पहुंचता हूं। यदि दो मील प्रति घंटे के वेग से जाऊं तो समय से घंटे भर बाद पहुंचता हूं। मेरे घर से जगह कितनी दूर है?—सवाल पढ़कर जीवन बाबू ने दो-तीन बार

टेढ़ा-मेढ़ा कर देखा। कैसे शुरू करूं, समझ न पाए।

बड़े भैया बोले, "सवाल तो दूर, मिमी ने पूछा है सभा क्या है? वहां गए बिना काम न होगा? बता, सभा क्या है? किसी तरह समझाया। फिर पूछा, "कुछ देर पहले या देर से पहुंचने से क्या फर्क पड़ता है? इन अटपटी बातों में आधा घंटा। फिर सवाल लेकर दोनों बैठे। डेढ़ कापी खतम हो गई!"

सब हंस पड़े। जीवन बाबू बोले, "ठीक है, सवाल बंद! साहित्य का क्या हुआ?"

"ना, मैं सवाल कर रही थी। बाबा-काका ने खाने के लिए बुलाया, मैंने कहा, "पढ़ाई पूरी किए बिना भगवान खफा होंगे। तो वे सवाल बनाने बैठ गए।"

"तू तो शंकी को सुला रही थी, पढ़ाई कहां कर रही है? मैं नहीं छोड़ूंगा। यह हृदय चरणों में अर्पित कर दूं हे नाथ! इसका अर्थ बता।"

अब साहस करके बोली, "नाथ...यानी जगन्नाथ, जिसका मुंह सांवला है। बड़ी-बड़ी आंखें हैं, चपटा मुंह..."

जीवन बाबू ने आंखें तरेरकर देखा। पर बड़े भाई के कारण कुछ कह न सके। बापू की आंखें देख मिमी सहम गई। उसका उत्साह मर गया।

ताऊ ने बात सम्हाल ली, बोले, "हां, ठीक है, अच्छा समझा, फिर?"

"फिर जगन्नाथ को देख कवि नाम के आदमी बोल उठे..."

"हां, बोले..." ताऊ ने उत्साह दिया। मिमी ने कहा, "जगन्नाथ के पग नहीं, मैंने देखे हैं। हृदय अर्पित किया।" बापू ने गाली दी, "अच्छा बाबा, हृदय कैसे अर्पित होता है?"

ताऊ ने मिमी को गोद में लिया, "पढ़ाई बंद। ...तूने जो पूछा, कोई नहीं बता सकता। हृदय कैसे अर्पित करें मैं भी नहीं जानता। तुम्हें क्या बताऊं? वह कविता मैं समझ गया, यह भी कैसे कहूं?"

महापुरुष बाग

बात महापुरुष बाग के उद्‌घाटन के कुछ दिन बाद की है। उद्‌घाटन के अवसर पर नेताजी ने भावभीने शब्दों में कहा था कि यह उद्यान आज से जाति-धर्म-पद के परे सबके लिए खुला रहेगा। यहां ऊंच-नीच का भेद नहीं। मेहतर भी बड़े अफसर के साथ एक बेंच पर बैठने का अधिकार रखता है...। भाषण की हथौड़ी मारकर उन्होंने सबके दिमाग में बात भरने की तरह बार-बार जोर से टेबुल पीटते रहे।

पर बात, बात ही रही। आदर्श, आदर्श ही रहा। अदालत में साखी कहेगा, 'पूरी तरह सच कहता हूं,' और शपथ लेकर धाराप्रवाह झूठ बोलता जाएगा। पूछो तो कहेगा—जी, आज के जमाने में सच से क्या दुनिया चलेगी? कोई जी सकेगा? एक तरह के नियम बनते हैं, फिर कहेंगे कि नियमों को जकड़ने पर तो काम बंद हो जाएगा—वैसे ही महापुरुष बाग का आदर्श, आदर्श में ही रह गया।

वास्तव में प्रवेश का अधिकार उन्हें मिला जिनकी मासिक आमदनी चार अंकों में है। आस-पास के लोग वहां जाने में डरते रहे। जो ऊंचे अफसर थे या विधान सभा आदि के सदस्य थे, उनका प्रवेश मान्य था। फिर उद्यान का विराट परिवेश, उद्यान में नृत्यशाला, नृत्यशाला में भव्य कपड़े, पहले लोग पेय लेते रहे, पेय के बाद नग्न उच्छृंखलता, मखमली घास, रंग-बिरंगी फुहारे आदि...साधारण लोग आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, नैतिक दृष्टि से भी महापुरुष बाग में जाने से डरते।

परंतु चूंकि सम्मानित लोग महापुरुष बाग में जाते हैं, इसलिए साधारण लोगों की ऐसी धारणा हो गई कि महापुरुष बाग में जाने पर वे भी सम्मानित होंगे। 'मुनिनां च मतिभ्रम' जिसे मतिभ्रम हो वह मुनि है—वह युक्तियुक्त न हो परंतु उल्टा होता है—सर्प में रस्सी का भ्रम होता है। सत्य की धारणा होती है। इसी भ्रम में पड़कर कई लोग महापुरुष बाग में प्रवेश की योग्यता के लिए स्त्री सहित सुरापान, अबाध प्रेम, तथाकथित बड़े-बड़े लोगों को बुलाकर डिनर, अपने से गरीब बंधु-बांधव का साथ छोड़ने का अभ्यास करने लगे हैं। उन्हें महापुरुष बाग में प्रवेश की कामना हो गई। चाहे किसी भी तरह हो। साथ में कुछ बड़ी-बड़ी बातें, उन्हें कहते समय भावुकता व्यक्त करने का कायदा हासिल कर सकें तो सोने पे सुहागा। सारी असाधुता सफलता के साथ ढंक जाएगी। गरीब-गुरबा के कंधे पर हाथ रखना होगा। मगर

वो तो दो मिनट की बात होगी। बस, फोटो खींचने जितना समय। फोटोग्रेफर तो तैयार होगा।

पर हमारे रामाराव तो ऐसे किसी भ्रम में न थे। उन्हें भ्रम हुआ, निहायत बेवकूफ की तरह। महापुरुष बाग उद्घाटन के समय नेताजी ने जो भाषण दिया, उन्होंने समझ लिया कि वह बात अंतःकरण से कही गई है। रामाराव के दुर्भाग्य से (तब सौभाग्य समझा) अखबार में फोटो छपा। आमतौर पर बाहर जो दिखे वह सच नहीं होता, उल्टा होता है। साथियों ने नेताजी के भाषण की जटिलता समझाने की पूरी कोशिश की। मगर वे दिखावेवाला सच पकड़े रहे।

रामाराव देखने में सुंदर हैं। कवि-प्रकृति। काम करते-करते अपने रचे गीत गाने लग जाते हैं। गाते हैं खूब सुंदर। काम से फुरसत पाते ही गीत रचने बैठ जाते हैं। पुराने हारमोनियम पर स्वर-ताल बिठाते हैं। गीत तेलुगु में। अर्थ समझ न आए तो भी मुग्ध कर देने वाला सुर होता है। एक गीत का किसी को अर्थ बता रहे थे, मैं सबकी चरण सेवा करता हूं, जगन्नाथ! तुम्हारे तो चरण नहीं! रामाराव की पत्नी सुंदर हैं। वे भी साथ में तन्मय होकर गीत गाती हैं।

महापुरुष बाग के उद्घाटन के बाद पति-पत्नी दोनों का मन किया कि प्रमोद हेतु उद्यान चलें। सम्मानित होने नहीं, नेताजी की बात से प्रेरित होकर। एक दिन शनिवार को निकले। रामाराव ने साफ धोती पहनी, पंजाबी गले में डाला, कंधे पर चादर। पत्नी ने लाल साड़ी पहनी। पड़ोसी रिक्शेवाला गंगया उन्हें ले गया।

उद्यान के गेट पर गाड़ियों की भीड़ थी। पैंट-कोट वाले लोग मोटरों से उतर रहे थे, झीने कपड़े पहने। उतरकर सब घुल-मिल जाते। मर्द युवकों की शैली में, औरतें अपनी उमर से कम की शैली में हावभाव दिखाती। उन्हें देख डार्विन याद आ जाएं—'हैलो, मिसेस प्रकाश! हैलो हैलो! मि. चक्रवर्ती! हाउ डू यू डू!...गूंजता रहा। दूर से सुनता शोर...गांव की हाट-सा लगता था। सब, दल के दल प्रवेश कर रहे थे। दरबान सलाम करते-करते हैरान, थक गया।

तभी रामाराव को लेकर गंगया का रिक्शा गेट पर रुका। औरों का अनुसरण कर पति-पत्नी रिक्शे से उतर फाटक के पास रुके। दरबान का हाथ सलाम करते-करते रुक गया। अचानक आगे बढ़कर रोक लिया। पैंट-कोट बिना अंदर कैसे जाएगा?

भाग्य से तभी महापुरुष बाग उद्घाटक नेताजी की गाड़ी वहां रुकी! खुशी में कीमती गाड़ी दुलक गई। नेता दंपत्ति उतरे। सब पैंट-कोटधारी लपके, उन्हें अंदर ले गए। उस बहाव में रुकावट बढ़ गई। भय से थोड़ा आगे बढ़कर मंत्रीजी को नमस्कार किया। तभी देखा कि पुलिस साहब मि. प्रकाश उनकी पत्नी को खींचकर ले जा रहा है! यह देख रामाराव मन ही मन गर्व का अनुभव कर रहा था। लेकिन डर भी कम न था।

शाम थी। अचानक महापुरुष बाग में रंग-बिरंगी बत्तियां जल उठीं। फव्वारे

मानो उस खुशी में आकाश में छलांग दे रहे हैं। पेड़ों पर लाल-पीले रंग के फूल खिल गए। अद्भुत पेड़ थे! कोई तिकोना, कोई चौकोर, कोई बाघ-सा, कोई हाथी-सा।

कुछ समय बाद महापुरुष बाग से नाच-गीत, रॉक एंड रॉल की ध्वनि आने लगी। सब पागल से उधर दौड़े। नेताजी भी। रामाराव की स्त्री को खींचे जा रहे हैं मि. प्रकाश। वे व्याकुल होकर पति को तलाश रही हैं। इधर रामाराव पर आक्रमण कर दिया सावित्री देवी ने, प्रसिद्ध व्यापारी मिस्टर धनपत की पत्नी। श्रीमती धनपत ने सोचा कोई एम. एल. ए. हैं। इधर मि. प्रकाश ने सोचा रामाराव की पत्नी कोई नारीनेत्री हैं।

महापुरुष बाग का गेट बंद हो गया। नृत्यशाला में शराब के दौर चल रहे हैं। नर-नारी सब मछली की तरह पी रहे हैं। आज नेता इंद्र विराजमान हैं, स्वयं शची देवी के साथ। उनकी उपस्थिति को सम्मान देने के लिए सब सामूहिक पान में शामिल है। इंद्र-शची भी खूब ले रहे हैं। रामाराव ने भी श्रीमती धनपति के जोर देने पर एक पैग लिया। उधर उनकी पत्नी के मुंह में पैग पर पैग प्रकाश उंड़ेल रहे हैं। वे सिर्फ मुंह खोले खड़ी हैं। आंखें व्याकुल हो रामाराव को ढूंढ रही हैं।

रॉक एंड रॉल की तर्ज पर बज उठा उद्दाम नृत्य का संकेत। सब मुग्ध, बेताल नाच उठे। नेताजी लड़खड़ाते आकर मि. प्रकाश को पीछे-से धकेल रामाराव की स्त्री को लेकर नाचने लगे।

तब रामाराव श्रीमती धनपत के तगड़े आलिंगन में बंधे थे। श्रीमती धनपत कह रही थीं—डार्लिंग! कौन हो? कोई भी हो, एक मतवाला गीत गाओ! रामाराव को नशा हो चुका था, पर होश था। गीत गाने में संकोच हो रहा था। जब मिसेस धनपत ने बार-बार कान में अनुरोध किया, सम्हाल न पाया। ऊंचे स्वर में गाने लगा—वही गीत—हे जगन्नाथ! तुम्हारे चरण नहीं, मैं सबकी पगसेवा करूं, तुम्हारे...'' रामाराव के विचार से यह उनकी, श्रेष्ठतम रचना है। सबको मुग्ध हो जाना था, पर सब उधर क्रुद्ध दृष्टि से देखते रहे। ऐं! वे चौंक गए।

इस रॉक एंड रॉल में अचानक यों बेसुरे! वाद्य बंद। नेता गरज उठे, 'हू इज दैट फू ऊ-ऊ...ऊ...ल!' सब गरजने लगे...'...फ...ऊ...ऊ...ऊ...ल!' नृत्यशाला में आंधी आ गई। खड़े-खड़े सब उधर देख रहे थे।

रामाराव का नशा एक पल में गायब हो गया। नेताजी की ओर हंसते देखता रहा, ''जी मुझे नहीं पहचाना? मैं...मैं मोची रामाराव। आपके जूते कितनी बार मरम्मत कर घर ले गया हूं! अखबारों में आपके साथ मेरा फोटो कितनी बार छपा है!''

हू...हू!...और जोर से शोर मचा। गला पकड़ रामाराव दंपति को वहां से बाहर कर दिया गया।

कुछ दिन बाद देखा—रामाराव के घर के आगे पुलिस। पूछने पर पता चला—पुलिस सा'ब के घर जूता चुरा लाया, पकड़ने को पुलिस आ गई। हथकड़ी डाल रामाराव को पुलिस ले गई। रामाराव की पत्नी रो उठी—'क्यों उस मंत्री की बात में पड़कर चले गए बाग में?

रामाराव से पूछा—बात क्या है रामाराव? सचमुच जूते चुराए हैं? उसकी आंखें भर आई। सम्हलकर, हंसी में बोला, "एकदम झूठ! मेरे महापुरुष बाग जाने का फल है।"

विश्वास न हुआ तो पूछा, "मगर पुलिस ने तो घर से जूते बरामद किए हैं!"

वे वैसे ही मुस्कराकर बोले, "मैं भी तो कुछ नहीं समझ रहा।'

रामाराव जेल हाजत में गया।

किसी ने जमानत भी नहीं भरी।

छः महीने में विचार पूरा हुआ। राय दी गई—चोरी प्रमाणित हो गई है, इसलिए छः महीने जेल!

रामाराव ने दलील नहीं दी। दोष स्वीकार कर लिया। विचारक को फैसला करने में कष्ट नहीं हुआ।

छः माह जेल भुगतकर शाम को वे बाहर निकले। उसी दिन महापुरुष बाग उद्घाटन का वार्षिक समारोह था। वे उधर से ही घर लौट रहे थे। गेट पर से नेताजी का गंभीर भाषण सुना, "यहां सबको प्रवेश का अधिकार है। फिर एक बार घोषणा कर रहा हूं, इस देश में गणतंत्र का शासन होने के कारण..."

सुनकर रामाराव को म्लान हंसी आ गई।

अचानक टेबुल थपथपाने की आवाज आई—रामाराव ने ठहाका लगाया तो दरबान ने वहां से हटा दिया। घर लौटकर देखा—पत्नी नहीं! पता चला पुलिस कब से पकड़कर ले गई, पुलिस सा'ब के घर। उसके बाद वह नहीं लौटी।

कमरे के कोने में वह पुराना हारमोनियम, कविता की कापी और जूते मरम्मत करने का सामान...सब वैसे सहेजे पड़े हैं। जाते समय पत्नी सब सजाकर रखकर गई हैं।

पाषाण के प्राण

यादव बाबू के डेढ़ वर्ष के बेटे का बुखार महीने भर में भी जब न छूटा तो होम्योपैथ डाक्टर ने कहा, 'मुझे कुछ संदेह हो रहा है, एक्सरे करवा लें।' कम पैसे लगेंगे, अतः होम्योपैथी इलाज करा रहे थे। डाक्टर की बात से उनके माथे पर वज्र पड़ गया—पहले तो रोग के कारण, दूसरे खर्च के कारण।

पर उपाय क्या था? इतने दिनों बाद तो बेटा पैदा हुआ। जान लगाकर भी उसे बचाना होगा। मगर महीने के अंत में एक्सरे के पैसे कहां से लाएं? अस्पताल के लिए रिक्शा किराया तक के पैसे जेब में नहीं। एक्सरे तो दूर। उधार करते-करते थक चुके थे। अब महीने के अंत में कौन देगा? खुद को धिक्कारने लगे। मगर इसका जिम्मेदार कौन है? किसे दोष दें? हालांकि भगवान के अस्तित्व पर विश्वास नहीं है, मगर रोजमर्रे के दुःख-दर्द और अंतहीन कर्तव्यों में इस पर सोचने का समय ही नहीं मिला। फिर भी खुदा को दो-चार गालियां दीं, फिर डर के मारे प्रार्थना करने लगे—हे भगवान! यही विचार है? दरिद्र बनाया है, उस पर रोग देकर मजाक उड़ा रहे हो?

एक हफ्ते में सात दिन हैं। दफ्तर से लिखवाकर फ्री एक्सरे करा सकते थे। मगर सरकार की धीर-मंथर गति के भरोसे रोग बैठा नहीं रहेगा। सात दिन में पता नहीं क्या से क्या हो जाए? एक बार सोचा पड़ोसी से उधार मांगे। मगर सोचकर ही आंखें छलक आईं। पड़ोसी कच्छी सुनार पैसे वाला है। कुछ दिन पहले जरा-सी बात पर तू-तू मैं-मैं हो गई। वे अपने बच्चों के गूंह पोंछकर कागज यादव बाबू की बाड़ी में फेंक देते थे। यादव बाबू की पत्नी ने बार-बार आगाह किया। उसने यादव बाबू से कहा, मगर यादव बाबू डरकर कुछ न कहते, खुद उठाकर फेंक देते। पत्नी को कह देते—उन्होंने माफी मांग ली है, भविष्य में सावधानी की बात कही है। पत्नी के आगे झूठ कह देते। पर वह नहीं मानती। एक दिन फिर ऐसे ही मैला कागज पड़ा देख, उसने खुद जाकर प्रतिवाद कर दिया। बात झगड़े की ओर बढ़ने लगी। यादव बाबू किसी तरह सम्हाल पाए, लाचार श्रोता बने रहे। अंत में पड़ोसी के नौकर ने बाहर आकर कहा, "मांजी, क्यों छोटों के मुंह लगती हैं? जिनकी हांड़ी खनखना रही, वे मुंह मोड़ चल दिए। यादव बाबू ने दोनों ओर

देखा। दोनों सिर नीचा कर वहां से चले आए। गहरी सांस लेकर कहा—न धनहीन बंधुर्मध्ये जीवितं।

कहां से रुपए लाए, दिन भर यही फिक्र लगी रही। कोई उपाय न दिखा, शाम को श्री गोपालजी मंदिर की ओर चल दिए। उन्हें विश्वास हो चाहे न हो, बड़े-बड़े साधु-संत तो कह गए हैं कि भगवान को आतुर होकर पुकारो तो वे वांछा पूरी करते हैं। हाथ-पांव धो, काफी पुरानी मठे की रेशमी धोती पहन मंदिर गए। मूर्ति की ओर देखकर मन में आतुरता लाने की खूब कोशिश की। पर मन में उलटे तर्क और भगवान के अस्तित्व संबंधी प्रश्न आने लगे। क्या है भगवान? अगर है, तो क्या आकार है? हमारी आतुरता या भावुकता से उनके अस्तित्व के बारे में जो विश्वास पैदा होता है, उसकी सत्यता के बारे में और कोई प्रमाण है? पागल ही ईश्वर को पैदा करता है, पर उसका वह ज्ञान हास्यास्पद है। हमारी भावुकता भी हास्यास्पद नहीं? सब कहते हैं विश्वास से कृष्ण मिलते हैं, तर्क से नहीं। विश्वास पर इतना जोर क्यों दिया गया है? दो-दो मिलकर चार होते हैं। कोई तो नहीं कहता कि विश्वास करने से ही ऐसा जानोगे। एक बड़े मनोवैज्ञानिक की बात याद आई। उन्होंने भगवान के विश्वास करने के सात कारण गिनाए हैं—अमर होने की तीव्र इच्छा, अधिकार पाने की तीव्र इच्छा, प्राकृतिक आपदा से डर। इन बातों में यादव बाबू बेटे की बात भूल गए। याद आने पर फिर आतुरता लाने की कोशिश करने लगे।

बचपन में मां गजनिस्तारण स्तुति बोला करतीं, वे रो पड़ते। कुंभीर जब हाथी को 'पकड़कर वापी में खींच ले गया, जंतु ने पकड़े पांव चार दांतों से खींच लिया। कहा प्राण अब लेंगे नीच।...' उनके नयन छलछला गए। हाथी को कुंभीर से निस्तार का उपाय न दिखा—

वह विचारता मन ही मन में
जब विचरण करता था वन में॥
रात सिंह पर्वत पर था जब
खूब शोर किया था उसने तब ॥
मुनियों ने तब बहुत कहा
विपत भावग्राही बने सहाय॥
यादकर मन में वहां
पद्ममूल हाथ में लिया॥
पुकारा हे आदिमूल!
रक्षा करो देवकीनंदन, मधुसूदन॥

यादव बाबू को कोई रोक नहीं पाते, मां की गोद में मुंह छुपाकर रो पड़ते। मां पीठ पर हाथ फिराते-फिराते करुण स्वर में गज निस्तारण स्त्रोत बोलती जातीं। आज वही बात याद आ रही थी। किसी तरह आतुर होकर पुकार न सके। उनका

ज्ञान मानो स्वर रोक रहा था। अधीर होकर कहा, "हे भगवान! पंडितों ने कहा है कि विद्या ऐसा धन है जो चोर चोरी नहीं कर सके। मुझे यह धन नहीं चाहिए। निकाल लो यह धन, वापस कर दो बचपन का विश्वास, आतुरता।" कोई फल नहीं हुआ। अंत में खीझकर उस मूर्ति की ओर देखा—आतुरता नहीं आई, "पर मैं आतुर हूं, इसमें तो संदेह नहीं। देखें कितने अंतर्यामी हो! भावग्राही हो!"

पर अगले दिन सुबह भगवान की भावग्राहिता पर निर्भर न रह सके। सुवह हाकिम के द्वार पहुंचे उधार के लिए। कुछ समय बाद हाकिम बाहर निकले, उसे अचकचाकर देखा। कहा, "देता हूं, पर याद रखो, जिसमें पोषण की क्षमता नहीं, संतान पैदा करने का उसे अधिकार नहीं।"

यादव बाबू ने बात हजम कर रुपए ले लिए। रुपए से जो आनंद मिला, उसमें हाकिम के वाक्यवाण का पता न चला।

बेटे का एक्सरे हो गया। डाक्टर ने फोटो देख एक पन्ने की दवा, पथ्य आदि लिख दिए, "वे निहायत जरूरी हैं। एक बात और, एक अच्छा थर्मामीटर खरीदना। ज्यादा नहीं, सिर्फ साढ़े चार रुपए में। रोज दोनों वक्त बुखार देख खाते में नोट करना।

डाक्टर रुपए लेकर चला गया। कागज को यादव बाबू सूने-सूने देखते रहे। यादव पत्नी गहने लिए खड़ी-खड़ी कह उठी, "चिंता न करो। बेटा ठीक रहे, बच जाय, बस सब ठीक हो जाएगा।" यादव बाबू ने एक वार पत्नी को देखा, फिर वह लेकर चले गए।

इलाज चला। डाक्टर के कहे मुताबिक थर्मामीटर भी आया। सुबह खुद नापकर खाते में लिखते। दोपहर बाद दफ्तर आने में देर होती। तब पत्नी ज्वर देखती।

दो दिन बाद दफ्तर से लौटे तो पता चला कि थमामीटर टूट गया। कुछ बोले नहीं। बेटे को लाड़कर कहा, "अरे बाबू! तूने तोड़ दिया! पैसे कहां से लाऊंगा खरीदने के लिए? गहने गिरवी रखकर जो पैसे लाया उसमें सौ अभी हैं। खैर पैसों की चिंता नहीं है फिलहाल।"

अगले दिन सुबह बुखार देखा, बेटा थमामीटर कांख में रख हंसने लगा। हाथ छिटक दिया। इसके लिए वे तैयार न थे। छूट गया, और टूट गया। बेटा हंस रहा था। पिता को कितने अर्थ संकट में डाल दिया, वह नहीं जानता। यादव बाबू हल्की-सी सांस लेकर हंस पड़े। पृथ्वी की माध्याकर्षण शक्ति भी गरीबों का उपहास करने की ताक में थी।

किसी को कुछ नहीं कहा, बक्सा से साढ़े चार रुपए लेकर बाजार गए, तुरत थमामीटर ले आए। लौटकर ज्वर मापकर लिखा। पत्नी ने कहा, "खूब सावधानी से बुखार देखना। इतना टूटने पर कहां से लाएंगे?"

मगर जितना सावधान हो, कुछ दिन बाद फिर टूट गया। दफ्तर से लौटकर सुना तो यादव बाबू के माथे पर मानो वज्रपात हो गया। गुस्से में, मान में, हताशा

में भरी थाली पत्नी की ओर फेंक दी, बेटे को थप्पड़ लगा दी। हंगामा मच गया। 'मेरे बेटे को पीटा', पत्नी फफककर रो उठी! यादव बाबू सिर पर हाथ रखकर बैठ गए। उस दिन सबका खाना-पीना बंद।

अगले दिन दफ्तर में छुट्टी की दरखास्त भेज दी।...''मैं दिखाता हूं कि कैसे सावधानी से बच्चों का ज्वर देखा जाता है।'' शाम को पत्नी को बुलाकर कहा, ''मैं बैठा हूं, तुम देखो।'' पत्नी ने गंभीर भाव से बेटे को गोद में बिठाया, कांख में थर्मामीटर रखा। निकालकर लालटेन के पास लिया।

यादव बाबू चीखे, ''अरे! ये क्या, लालटेन के ताप में पारा चढ़ जाएगा।''

पत्नी ने कहा, ''हमें सीखने न दोगे? लालटेन से पारा नहीं उठता है। ये देखो!''

यह कहकर पारे की तरफ लालटेन को लगा दिया। देखते-देखते पारा आनंद में चढ़ते हुए सीमा पार कर गया। घबराकर हटा लिया। फिर बेटे की कांख में लगा दिया। एक मिनट बाद निकालकर देखा। देखते-देखते वह नीचा खिसकने लगा।

यादव बाबू रुआंसे हो गए। ये क्या किया! खराब कर दिया!

पत्नी ने झाड़कर फिर लगाया। निकालकर देखा तो फिर तेजी से नीचे गिर रहा है।

यादव बाबू विषमता की हंसी में गा उठे—

उड़ि जाउछि लोटणि पारा।
दुनिया रे लागिछि धरा परा॥*

थर्मामीटर लेकर दुकान गए। वहीं से तो दवा वगैरह खरीदा करते हैं। पहले दुकानदार से कहा कि खराब थमामीटर दे दिया है। मगर दुकानदार ने कड़ा प्रतिवाद किया तो यादव बाबू ने सच कह दिया! दुकानदार ने उनकी करुण कहानी सुनकर दयावश कहा—ठीक है उसे रख जाएं। किसी और को बेच देंगे, मगर बिक न सके तो दाम आपको देने होंगे। फिलहाल दूसरा ले जाएं।

नया थर्मामीटर लेकर लौटे। मगर बात उन्हें ठीक न लगी। मेरी तरह कोई और अभावी होगा, तो बेचारा छटपटाएगा! क्यों कोई और ठगा जाएगा? मन ही मन बेचैन हो उठे। आंखें छलछला आईं। अपना खराब थर्मामीटर वापस ले आए तथा एक और खरीद लाए।

सिर पर से एक बड़ा बोझ हट गया। राह में गोपालजी मंदिर जाकर उनकी मूर्ति को देखते रहे। उन्हें लगा कि पत्थर की वह मूर्ति प्राणवंत हो उठी है। मूर्ति को देखकर आतुर हो कहने लगे, ''भगवान, मुझे धन, मान न दो! पर असाधु न बनाओ।''

आंखों से पानी झरता रहा। पर मन में अपूर्व आनंद की सिहरन भर रही थी।

---

* दुनिया में खेल लगा है, उड़ रहा पारा (कबूतर)!

धरती-धरती

यही है वह सर्वसहा धरती—कविगण नारी के रूप में जिसकी कल्पना करते हैं। जिसके ऊंचे पर्वतों की कुचों से कल्पना की गई। कोटि-कोटि वर्ष उम्र होने पर भी जो चिर यौवना है, निरलस रूप में चरखी-सी घूम रही है। प्रसव करती जा रही है करोड़ों प्राणी। कितनी अद्‌भुत संतान हैं। करोड़ों संतान जिसका रात-दिन दोहन करती रहती हैं।

पांडव-वंशावतंस राजा परीक्षित के शासन काल में जब यह एक बार हतप्रभ, अश्रुमुखी विचरण कर रही थी, धर्म ने पूछा, "भद्रे! तुम्हारी मलिन प्रभा! विवर्ण मुख देखकर लगता है किसी गहरी मानसिक पीड़ा में पड़ी हो। इसके बाद तुम्हें कामांध उन्माद क्षमतालोभी हिंस्र लोग भोग करेंगे, तथाकथित पंडित और वैज्ञानिक उन पागलों के भृत्य बनकर तुम्हारी अगणित संतानों के दुःख और विनाश के कारण बनेंगे, इसके लिए शोक हो रहा है? आत्म-संभावित शासकगण जनमंगल, शांति, आदर्श की दुहाई देकर औरों का शोषण कर अपनी पाशविक लालसा पूरी करेंगे, इस पर उद्विग्न हो? सब एक दूसरे के विनाश को प्रधानता देकर उसे उत्तम कार्य कहेंगे, इस पर तुम चिंतित हो? जो मानव संतानों को तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ सृजन मानकर गर्व का अनुभव करे, वे दीन हीन बुद्धि होकर अपनी क्षुद्रता पर मुग्ध होकर एक-दूसरे का विनाश कर, तुम पर नाना अत्याचार कर एक दिन तुम्हारी गोद से मिट जाएगा, इससे लज्जित व अपमानित महसूस करती हो? खूब रस और शस्य उत्पन्न करती हो, लोभी उसे छिपाकर या नष्ट कर तुम्हारी करोड़ों संतानों को भूखे रख दुर्भिक्ष पैदा करेंगे। राजा व राजकर्मचारी अपना धन बढ़ाने में उन लोभियों की मदद करेंगे, अंत में समूह क्रांति में नष्ट होंगे। क्या इस पर मर्माहत हो? जिस ज्ञान-विज्ञान की सहायता से आदमी कभी परम पुरुष की ओर आकृष्ट हुआ, शक्ति, शांति मिली थी, उस ज्ञान को आदमी परस्पर विनाश के लिए लगाएगा, भगवान से डरा मानव परमपिता की कल्पना करता है। इस पर व्यथित हो?" धरती ने कुछ न कहा। सिर नवाए आंसू बहाने लगी।

यह वही धरती है। कामदेव की स्त्री! जिसकी कई लोग धरित्री संग तुलना करते हैं। जिसके कुच युगल पर्वत तुल्य हैं। उम्र में प्रौढ़ा होते हुए भी जो युवती

है, सृजनक्षम है। जो सुबह से रात दो बजे तक आलस रहित होकर घूमते-घूमते भी गोद में एक संतान को स्तन पान करा रही है, दोहन कर रही है। जो बारह संतानों की जननी होकर भी गर्भवती है।

रात के दो बज रहे हैं। धरती की कुछ संतान विराट संहारक अस्त्र लिए चुपचाप चल रही हैं। मरणास्त्रों की परीक्षा होगी धरती के सागर वक्ष पर। आकाश से मारणास्त्र डाले गए। भयंकर कड़कड़ाहट में धरती की छाती हिल उठी। कांप गई। नीले आकाश में हजारों करोड़ों का विनाश हो सकता है। जिस देश के वे मारणास्त्र हैं, उस देश के राष्ट्रपति आनंद में, गर्व में बखान कर भाषण देने लगे। धरती के हृदय पर दुर्बल संतानों पर हिंसक पाशवी मानव लगन आदर्श की दुहाई देकर शोषण और हत्या में डूब गए।

धरती की कुछ संतान अन्यत्र चीख-चीखकर घोषण करने लगी...हुआ-हुआ... हत्या...हत्या...

धरती ने करवट ली। वह स्वयं नहीं मुड़ी। कामदेव ने उसे अपनी ओर मोड़ा। धरती की दूसरी ओर गोद कर बच्चा नींद में सोया है। मुंह स्तनाग्र से लगा है। आराम से जरा हलचल होते ही जागकर स्तन को कसकर जकड़ दोहन करने लगता है। कामदेव देर तक प्रतीक्षा करते रहे। खीझकर अंत में बिस्तर से जाकर धरती के एक ओर सो गए। प्रतीक्षा करते रहे कि कब शिशु स्तनपान छोड़े कि वे धरती को लेंगे। वे लेटे-लेटे उपभोग करने की उत्तेजक कल्पना करते रहे। धरती का एक ओर शिशु दोहन करता रहा है, दूसरी ओर कामदेव उसके लिए ताक में हैं।

आखिरकार कामदेव ने कहा, "तुम्हें दोहन करते-करते वह दुबली कर देगा। सारा खून चूस लेगा तुम्हारा।

धरती म्लान हंसी में कहने लगी, "और तुम मेरे बिस्तर पर क्यों आए? जितने पैदा हुए उतने तो मनुष्य नहीं हो पा रहे..."

कामदेव ने गुस्से में कहा, "नीति की बात छोड़ो। जो बाल-बच्चे पैदा करते हैं, वे उनकी बात देखेंगे। तुम और मैं कौन? उस बारे में चिंता न करो!"

शिशु सो गया। कामदेव ने खुद को भाग्यवान समझा। आज इसने धरती को सहज ही छोड़ दिया। उन्होंने धरती को अपनी ओर खींच लिया। धरती ने प्रतिवाद नहीं किया, काठ-सी पड़ी रही। उसने देखा कि प्रतिवाद करते ही कामदेव उत्क्षिप्त हो जाते हैं। शिशु भी इस बीच जागकर कुछ क्षण चुपचाप धरती की ओर देख फिर उसकी छाती में चिपक गया। कामदेव फिर प्रतीक्षा करने लगे। शिशु ने धरती को अपनी ओर कर लिया और फिर स्तनपान करने लगा।

धरती के एक स्तन से कलकल झरना बहा जा रहा है। रात में घूमते पक्षी कतार में किनारे बैठ चुपचाप पान कर रहे हैं। उस स्तन की दूसरी ओर पत्थरों का कंट्राक्टर बारूद लगाकर ढो-ढो सुरंग फोड़ रहा, पत्थर तोड़ रहा उस स्तन से।

बार-बार कांप उठती है धरती। कंट्राक्टर ने इस स्तन को ठेके पर ले लिया है। कुछ दिन में उस स्तन को वह धरती समान कर देगा। खूब धन कमा लेगा। काफी उत्साह से काम में लगा है। एक और ठेकेदार बड़ी भारी भंवर द्वारा धरती की छाती में जगह-जगह गड्ढे खोदकर रस तलाशने में लगा है। धरती की छाती तले जितना रस है सारा सोख लेगा।

गीदड़-सियार चिल्ला उठे—हुआ-हुआ...हत्या हुआ...हत्या। कामदेव प्रतीक्षा न कर सके। फिर धरती की करवट जबरन अपनी ओर बदली। कुछ समय दूहने के बाद शिशु तृप्ति से सो चुका था। कुछ समय बाद फिर भूख जगेगी। अब कामदेव जल्दी-जल्दी क्रीड़ा में लग गए। धरती को लोभ दे रहे हैं—गहने दूंगा, अच्छी साड़ी दूंगा। धरती की निश्चल पड़ी खुली आंख ऊपर ताक रही है। कामदेव की साड़ी-गहनों की बात सुन जरा हंस पड़ी। अपनी बातों का उचित प्रत्युत्तर न मिला तो गुस्से में भर हिंस्र हो उपभोग करने लगे।

धरती की छाती में कोई भूगर्भ बम रोपा जा रहा है। कोई कामांध हिंस्र तथाकथित जननायक उस संहारक अस्त्र का परीक्षण कर रहे हैं। तथाकथित वैज्ञानिकगण खड़े रहकर निर्देश दे रहे हैं। धरती फिर कांप उठी। कांप उठी विश्वंभरा जननी। वैज्ञानिक यंत्रों से वह कंपन माप रहे हैं और क्रम देख उल्लास में नाचने लगे।

धरती की छाती पर एक कोने में सन्यासी चिंता में बैठे हैं। यह संतान क्या चाहती है? यह संतान कवि-दार्शनिक है। वैज्ञानिक धरती को जड़ पिंड प्रमाणित करने के बावजूद यह संतान धरती को प्राणवान रूप में स्पष्ट देख पा रही है। उनके विचार में जड़ से कभी जीवन की सृष्टि नहीं हो सकती। जीवन से ही जीवन की सृष्टि होती है। धरती और धरती की संतानों के दुःख में यह संतान कातर है। दुखमोचन के उपाय पर विचार कर रहा है। धर्म-दर्शन आदि हिंसा के हथियार हो गए। लोग इनकी दुहाई देकर एक-दूसरे की हत्या-शोषण में लिप्त हैं। कोई देश अपनी स्थिति और प्रतिष्ठा की चिंता करता है। जरा-सी बात भी भयावह रूप ले लेती है। जो नाखून से टूटने की बात होती, वहां कुल्हाड़ी चलानी पड़ती है। स्थिति इतनी भयावह है कि युद्ध तक हो जाता है। इस भय, काम, क्रोध, लोभ को सृष्टिकर्ता ने आदमी के मन में रखा है, पर साथ में विश्लेषण और आत्मज्ञान की बुद्धि भी है। अतः वह इनका दास हो गया। विराट की ओर आकृष्ट होकर आदमी प्रतिष्ठा के लिए हिंस्र नहीं होता। अपने धन, यश, प्रतिष्ठा, क्षमता के लिए यों शठ निर्मम नहीं होता। मानवीयता का विसर्जन कर पाशविकता नहीं अपनाता। कैसे मनुष्य को विराट की ओर आकृष्ट कर बुद्धि का विकास किया जाए? ऐसा देश नहीं हो सकता जिसे हिंस्र युद्ध से जीतना एकमात्र गौरव की बात न मान शांति के विकास का गौरव माना जाए।

संन्यासी विराट विप्लवी है। जो मनुष्य के सहजात काम, क्रोध, लोभ, अहम्

को उत्तेजित कर जनप्रिय हो अशांति पैदा करे, आध्यात्मिक व शारीरिक विनाश का कारण बने, वह विप्लवी नहीं, मानव समाज का कैंसर है। जो शांतिकामी है, सिर्फ वही विप्लवी है।

बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य, परमहंस, राममोहन, गांधी, विराट विप्लवी थे। कितने निर्भय थे वे? अतः उनमें नैतिक व राजनीतिक शठता अथवा, चालबाजी नहीं थी। धर्म उनके लिए राजनीति-कूटनीति से बड़ा है।

संन्यासी ने प्रार्थना की, "हे विराट! तुमने जो अहम् दिया, जिसके उचित नियंत्रण में बुद्धि का विकास, और प्रबलता में विनाश होता है, वह अहम् तुम्हीं सम्हालते हो। कितना अजीब है संसार में तुम्हें जानने का प्रयास!

संन्यासी कल्पना कर रहे हैं भविष्य के राष्ट्रसंघ के बारे में...। वहां अनेक देशों की हिंस्र नीति के प्रतिनिधि नहीं होंगे, सारी पृथ्वी पर स्वार्थ त्यागी दार्शनिक होंगे, जो किसी देश विशेष के नहीं होंगे, मानवीयता के प्रतिनिधि होंगे। धरती की विराट छाती को जो अपनी हिंस्र बुद्धि से खंडित कर छोटे-छोटे भूगोल-इतिहास बनाने में लगे हैं, एक दूसरे की हत्या, शोषण में लगे हैं उनके प्रतिनिधि नहीं होंगे। वे बनाएंगे एक नूतन सेना। जो सेना आनंद से विराट का जयगान करते-करते आगे जाए, निर्भय हो तोप का मुंह बंद करने के लिए। क्षुद्रता का इतिहास किसी का जयगान करे पर मानवीयता का इतिहास सिर्फ इन्हीं का जयगान करेगा।

इस बीच धरती की संतान उठकर चीखने लगी। कामदेव को उसकी छाती से हटाने की चेष्टा करने लगा। देर तक सो गया था। वह लोभी हो उठा। अब वह ढीठ हो गया। कामदेव की भी वही हालत। दोनों सटे रहे धरती की छाती से। धरती पड़ी है वैसे ही मौन निश्चल उनकी छाती पर तरह-तरह की लीला चल रही है।

सियारों ने अंतिम पहर की हुआ-हुआ की आवाज की और कुछ ने दूर से पूछा—क्या हुआ? क्या हुआ?

धरती उठी। पति और पुत्र दोनों दोहन कर थककर सो गए हैं। दोनों अबोध संतान से लगे। अधर पर स्थित हास खिल गया। प्रार्थना की—हे परम पिता, इन्हें संयम दें, स्वस्थ सबल करें, बुद्धि दें!

आकाश में स्तब्ध भाव। संन्यासी पुकारते गए, "हे अमृत संतानगण! जागो! विराट की ओर चलो! वही सर्वश्रेष्ठ है!"

संन्यासी का आह्वान सुनकर धरती ने आकाश की ओर देख नमस्कार किया। चेहरा आशा से खिल उठा। घर का काम-काज करने सब्ज साड़ी पहन उठ गई, चरखी-सी फिरने के लिए।

धरती आकाश को देख हंस पड़ी। आशा के आलोक में अचल हो गई। उसने प्रार्थना की, "हे अनंत पुरुष! मेरी संतानों के मन से अबोधता दूर करो। उन्हें क्षमा

करो। स्वस्थ सबल बना दो! उन्हें संयम दो। कोटि-कोटि संतान गोद में लेकर वह भी चरखी-सी घूम रही थी। उनकी रोजमर्रे की हरी साड़ी आनंद में तरंगायित होने लगी।

संन्यासी गाते जा रहे थे—

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित् दुख भाग् भवेत्

उनकी प्रार्थना ने मानो सारी हिंस्र प्रवृत्ति का शोषण कर लिया—
नीलकंठ की तरह।

स्वप्नसिद्ध

टेबुल पर लालटेन धीमी-धीमी जल रही है। चारों ओर सूनसान। सिर्फ पड़ोस में जिद्दी बच्चे की रुलाई बार-बार तैर आती है। मिमी और टुकना सो चुके हैं। अभी कुछ देर पहले ही उनका झगड़ा, मारापीटी बंद हुई है। मां किसकी तरफ मुंह करके सोएगी इस बात पर उन दोनों के बीच जोरदार झगड़ा चला। प्रीति को भी गहरी नींद आ गई है। मगर उसका पंखा फिराना बंद नहीं हुआ, न ही गीत गुनगुनाना। उनींदे ही गुनगुना रही है, "मिमी, मेरी लाडो रानी..." मानो किसी स्वप्नलोक से अपूर्व स्वर तैर आता है। उसमें मिल जाता है, पंखे का अविराम स्वर...कें...कें...। पता नहीं प्रीति के उस स्वर में कैसी मोहिनी शक्ति है, मिमी और टुकना जैसे दुर्दंड प्रतापीगण भी सो गए हैं।

सुदाम बाबू धीरे-से बिस्तर से उठे। चैन की सांस लेकर घर से बाहर आए। अत्याधुनिक लेखकों में उनका नाम खूब प्रचलित है। जितने अद्‌भुत शब्द लगाते हैं, भाषा-भाव, उपमा जितने दुर्बोध होते हैं, उनका स्थान दृढ़ होता जाता है। कुछ दिन हुए एक जटिल, प्रेममूलक विज्ञान कथा मन में आई है। फ्रायड, एडलर, युंग का मनोविश्लेषण, डार्विन बर्गसां, मार्क्स का विवर्तनवाद, फिजिक्स का परमाणु तत्व, आइंस्टाइन का सापेक्षवाद और ज्यामिट्री का तीसरा उपपाद्य; साथ में हिन्दूधर्म का जन्मांतरवाद मिलाकर एक अपूर्व और अद्‌भुत उपन्यास लिखने की कल्पना की है। मगर घर में जो गोलमाल, टुकना-मिमी के बीच लघुयुद्ध चलता है उसमें लिखने की बात विचारों में ही रह जाती है। लालटेन धीरे से टेबुल पर रख, उकसाकर कागज पर कलम रखी ही है कि मिमी हड़बड़ाकर उठ बैठी, चिल्लाने लगी, "मां...मां देखा...भैया को..."

कलम कागज रख दिए। थककर कुलदेवता का नाम मन ही मन जपने लगे...रघुनाथाय नाथाय...! तभी मिमी की आवाज आई। मन किया कागज को फाड़ दूं। कलम की नोंक टेबुल पर टिका दी। मन किया कि ये सब तोड़-फोड़कर संन्यासी बन घर से निकल जाऊं। मगर वैसा कुछ नहीं किया। हताश होकर बैठे रहे, कुलदेवता का नाम रटते-रटते प्रीति की ओर देखते रहे।

प्रीति निर्विकार भाव से सोई है, गा रही है, "मिमी मेरी लाडो रानी!" सुदाम

ने निर्मम शांत स्वर में पूछा, "अरे, मिमी गला साध रही है?"

प्रीति हड़बड़ाकर उठ बैठी। सुदाम की ओर देख•हंस पड़ी। मिमी का मुंह बंद कर कहा, "चुप, चुप, मुंहजली!" मगर किसमें जोर है जो मिमी का रोना बंद करा दे।

पलंग पर से दुम-दाम की आवाज आने लगी। टुकना मिमी के अभियोग पर उत्तेजित होकर पलंग पर ही मुक्के मार रहा है। यह उसकी युद्धपूर्व सूचना थी। सुदाम समझ गया—अब थोड़ी देर में लड़ाई छिड़ेगी। वही हुआ। फेंकना-पटकना चला।

इनके मारे आदमी चैन से सो भी न सके। हे भगवान! इससे तो मर जाना अच्छा है! प्रीति ने आक्षेप किया। फिर मिमी और टुकना की पीठ पर एक-एक धौल जमाए। टुकना का कान पकड़कर कहा, "अरे! तूने मिमी की ओर पांव क्यों किए?"

"उसने मेरी ओर हाथ क्यों किया!" टुकना ने उसी स्वर में उल्टे सवाल किया!

"छिः, दोनों इतने झगड़ालू हैं? ये टुकना बहुत जिद्दी है!" टुकना की चरित्र-लिपि में यह मतंव्य कई बार लिखा जा चुका है। मगर टुकना को परवाह नहीं। उल्टे गुस्से में भरकर मिमी की पीठ पर दो-चार धम-धम जमा दिए। मिमी और कुछ तो कर न सकी, प्रीति की बांह में काट लिया।

"मर गई मां!" प्रीति चीख उठी।

मिमी पेट में आई तब से जिद्दी है। उसने जब बोलना भी नहीं सीखा था तभी से उसमें वेदनामय ढंग से गुस्सा व्यक्त होता। जब मिमी पेट में थी, टुकना बीमार पड़ा। चिड़चिड़ापन और जिद्दीपन शुरू हो गया। सदा मां की गोद में रहने की आदत पड़ गई। मिमी के आते ही प्रसूता के कमरे की ओर दरवाजे पर खड़े-खड़े देखता रहा, फिर घर के कोने में जाकर चुपचाप बैठ गया। इसके बाद जब मिमी को दूध पीते देखता, धकेलकर गोद में आ जाता। मिमी को अकेली देखता तो चिकोटी काट लेता। थप्पड़ मार भाग जाता। सुदाम यह सब देख खीझ में भर उठते।

प्रीति ने कहा, "ये दोनों छोटे-बड़े हैं पर कलह करेंगे!"

दोनों को अलग कर दिया, बीच में सो कर, सीधे सोकर कहानी कहने लगी। प्रीति ने पूछा, "मिमी, तूने वह बाघ देखा है? इतने बड़े-बड़े कान! इतने मोटे दांत, ये मोटे कान, ये हाथ..."

"बाघ के हाथ होते हैं? झूठ बोल रही हो? तुम्हें ठाकुरजी मारेंगे!" टुकना ने याद करा दिया। उसी के उपदेशों की बात। झूठ बोले ठाकुरजी मारेंगे!

"ना...बाघ के हाथ नहीं होते। गलती से कह दिया।"

मगर मिमी मानने को तैयार नहीं, "मां, बाघ के हाथ होते हैं। वरना वह भात कैसे खाता है?"

उत्तर में प्रीति ने कुछ न कहा। वह बोलती गई—तभी बाघ आ कर लगा कहने लगा—

हाऊं...माऊं...खाऊं
मानुष की गंध पाऊं
किसे रोता पाऊं?

मैंने कहा—नहीं, मिमी नहीं रो रही। तू जा। ब्राघ ने कहा—ठीक है, मैं जा रहा हूं। कोई रोए, उसे मैं ले जाऊं।

बाघ की कहानी कहने में टुकना को कोई आपत्ति नहीं थी। मिमी और टुकना दोनों आंखें फाड़े सुनते रहे।

टुकना ने कहा, "बाघ मिमी को ले जाए। वह मेरी पाटीबरता खा जाती है!"

यह अभियोग सच है। मिमी पाटी बरता लिखने के लिए कभी पसंद नहीं करती। उसने देखा है—यह खाने की बढ़िया चीज है। मां को कसकर कहा, "कुना को ले!"

फिर प्रत्यक्ष वचन-युद्ध शुरू हो गया।

'तुझे ले!'

'तुझे ले!'

प्रीति की छाती को युद्ध भूमि बना उस पर लड़ने लगे।

प्रीति दोनों को धकेल कहने लगी, "दोनों इस तरह लड़ोगे तो मैं घर से चली जाऊंगी। बाघ मुझे ले। बाघ ले जाए मुझे!"

मिमी ने कहा, "मैं उसे भात दूंगी, नहीं लेगा।"

टुकना बोल उठा, "मैं बंदूक चला दूंगा उस पर!"

प्रीति पलंग से नीचे उतरी। मिमी-टुकना दोनों ने कसकर पकड़ा। प्रीति धकेलकर बाहर आ गई। एकदम बाहर!

भाई-बहन धम से खड़े रह गए। छलछलाई आंखों से एक-दूसरे की ओर देखा।

कुछ क्षण विराम। सुविधा पाकर सुदाम फिर लिखने लगे। उपन्यास में जटिल परिस्थिति है। युगों पहले भारत में जो आध्यात्मिक स्पंदन था, उसे आकाश से संग्रह कर भारत ने संचय किया है। अतः पृथ्वी का वह आध्यात्मिक गुरु है। अब भारत औरों को वह स्पंदन भेज रहा है। इधर कोई देश पृथ्वी पर प्रधान गणतंत्र का उपासक हो गया। हर आदमी का चिंतन और मत व्यक्ति की स्वतंत्रता को आदर दे रहा है। ऐसा अन्य कोई देश नहीं कर पाता। एक लम्हे में पृथ्वी की जनसंख्या के बीस गुना लोग मार डालने की क्षमता रख विभिन्न देशों को गणतंत्र का स्पंदन दे रहा है। उधर सोवियत देश श्रेष्ठ जनमंगलकारी देश हो गया। शोषित का एक मात्र मसीहा। आधे पल में पृथ्वी की जनसंख्या के चालीस गुना को मार डालने की शक्ति आहरण में लगा, जनमंगल के स्पंदन दे रहा है। ये शक्तिशाली स्पंदन अपने-अपने मार्ग में जाते समय एक साथ मिलकर आकाश में प्रचंड स्पंदनावर्त

पैदा कर रहे हैं।

इसी बीच नायिक कारबोलिका 1/2 फ. अपने पूर्व जन्म के प्रेमी को चंद्रलोक में दो अंगस्ट्रोम युनिट इलेक्ट्रोमेग्नेटिक प्रेम भेज रही है। इधर ठीक उसी समय दो जन्म पहले का पति चार ग्राम लिक्विड प्रेम भेज रहा है...

तभी सुदाम ने रुलाई सुनी...मां...मां! मिमी और टुकना का एक साथ रोना शुरू हो गया।

कलम रखकर कहने लगे, "धेत्! इस घर में कोई लेखक नहीं हो सकता। पत्नी कुछ प्रेरणा दें, वो तो दूर, सारी बाधा खड़ी कर रही है। ऐसे कोई लेखक बना है? बच्चे भी ऐसे हैं कि बस...।"

रोने की आवाज ऊंची हो रही है।

उन्होंने आवाज दी, "सुनती हो..."

प्रीति अंधेरे कोने से निकल हंसते हुए कहने लगी, "मैं क्या करूं, बोलो?"

"यदि अद्‌भुत पत्नी की मर्यादा पाना चाहती हो, कृपा कर पहले इन्हें चुप कराओ।" सुदाम हाथ जोड़कर कह रहे थे।

प्रीति खिलखिलाकर दोनों के पास जाकर गाने लगी–

तुम्हें छोड़ मैं कहां जाऊं मेरे मिमी-टुकना!
तुम्हारी खातिर मर भी सकूं ना मेरे मिमी-टुकना!
मर कर भी मैं भूत बन संग रहूं मेरे मिमी-टुकना

"कृपया यह काव्य मंदाकिनी रोको?" विनय में चरम खीझ भरी थी।

"ये कविता की धारा कौन रोकेगा मेरे मिमी-टुकना!" प्रीति उस अनुरोध की परवाह किए बिना गाती रही।

सुदाम और खीझ में भर गए, "इस घर में अब रहना भी मुश्किल है।" धम से कुर्सी पकड़ खड़े हो गए बाहर जाने के लिए।

"मिमी टुकना छोड़ कहां जाना मेरे जानम?"

"क्या कहा? क्या कहा?" जाते-जाते थम गए। उसने 'जानम' कहा था। उसे ही दुहराया–

जिधर जाओ उधर से खिंचे आओगे जानम!
और जानम यहां बंधे होंगे...हो यहां जानम!!

अंतिम पद पर सुदाम बिदक गए। "बंधे होंगे। देखें, कैसे बंधे होंगे" –कहकर कुर्सी पर धम से बैठ गए।

प्रीति ने जरा तिरछी नजर से सुदाम की ओर देखा। मुस्कराकर मिमी व टुकना को गोद में लेकर सो गई।

मिमी ने कहा, "मां, मामा की कहानी कहो!"
प्रीति फिर गाने लगी–

चांद मामा, चांदनी दे।
मिमी जाएगी ससुराल।
साथ कौन जाएगा?...
मिमी ससुराल कौन जाएगा?"

मिमी ने सहज कहा, "टुकु भैया...टुकु भैया!"
टुकना ने सुना दिया, "ना...मैं न जाऊं!"
"मां...जाएगा, भैया ही जाएगा।" फिर गाने लगी–
"साथ जाएगा टुकना भैया...छाता लेकर जाएगा!"
अजीब चलचित्र मानस पटल पर उभरा। पुराने दिनों की रुलाई याद आ गई...
गांव की लड़की पद्मा विवाह के बाद विदा हो रही थी। बचपन में बाप खो चुकी थी, सिर्फ छोटा भाई था। शकुंतला तो आश्रम से विदा के समय हिरन, पेड़, लता से भी विदा ले रही थी। पद्मा बस एक को लेकर फफक उठी–छोटा भाई पास आया, धीरज सम्हाल न सकी। वह रो पड़ी–

उसनाया धान क्या अंकुराएगा, मेरे भैया?
सचमुच छाता टिका सकोगे, मेरे भैया?

"मैका दूर छोड़कर बहन कब से ससुराल चली आई है। खेतों में तीन कोस पर बूढ़ी नदी, तपती बालू पार करने पर बासुलाई पाट, उस पाट में कितना लंबा रास्ता चला गया, छोर ही न दिखे। किनारे पर भी कोई दूब-घास नहीं, साल भर नौका चले। काला स्याह पानी। मानुष खानी नदी। तेज धार पार करने पर फिर खेत। खेत के उस पार हरिपुर, बहन की ससुराल। ब्याह कर आने के बाद बहन ने फिर मुड़कर नहीं देखा। वापस कौन लाता? भाई तो नन्हा था। कब बड़ा होता, लिवाने जाता..." अब बड़ा हो गया। कलकत्ता जूट मिल में चाकरी करता है। छुट्टी लेकर आया है। कई चीजें लेकर। अगले दिन छाता लेकर हरिपुर निकला। बहन को लाना है। खरसुआ नदी के किनारे पहुंचा तो सूरज सिर पर। थक कर किनारे बैठ गया। अंजुरी भर पानी पिया। हाथ धोया, आवाज दी, "सतुना भई...जल्दी नाव लाना।"

नाववाले ने झिड़कर कहा, "ठहर मेरे लाट साहब!"

नदी पारकर अमराई में बैठ कमर से कलकत्ती गमछा खोला। पसीना पोंछा। सामने देखा, आरसी पिटऊ, काकरा, साड़ी, अलता, सिंदूर, बनारसी काच, दर्पण शंखा, चूड़ी अतर, साबुन, नई डिजाइन का ब्लाउज। एक-एक को थाली में सजाया।

कोई चीज किसी से मेल कर खरीदी नहीं गई थी। जब जो मिली ले ली। कुछ आम थाली में रखे, फिर चला। अब दूर नहीं। खेत के उस पार शिखर दिखता है। उसी के पास में बहन की ससुराल है। तेज कदम उठाए। बरामदे में एक ओर छाता रख आवाज दी, "जीजी!" धीमे-से एक आवाज, सास को पंखा झलते-झलते बहन का हाथ थम गया। छाती धड़क उठी। कान लगाया। मन ही मन पूछा—दादा भैया है! सास का डर भूल गई। साड़ी सम्हाली। द्वार खोला। दोनों के मुंह पर भाषा न थी। आंखों से पानी बह रहा है...

टुकना ने सिर हिलाकर कहा, "मैं मिमी संग ना जाऊं ससुराल!"

मिमी ने धीरे-से मां के कान में कहा, "हां, मां...भैया जाएगा!"

टुकना ने पीठ पर धम से धौल रखा।

मिमी जोर से रो पड़ी, "हां, भैया जाएगा।"

सुदाम सुनकर खड़े रहे। सोचा, एक परीक्षा कर देखें। मां को बाघ ले गया—इस बात पर दोनों रो-रोकर बेहाल हो गए। देखें, मेरे लिए क्या कहते हैं?

टुकना व मिमी को पास बुलाकर कहा, "देखो, तुमलोग मुझे बहुत परेशान करते हो, मैं जा रहा हूं...मुझे बाघ ले जाएगा...जाऊं?"

मिमी और टुकना की आंखें मां की तरफ थीं।

"बोलो, जाऊं? लो, चला!" सुदाम पूछने लगे। प्रीति मुसकरा रही थी।

"जाऊं?" फिर पूछा।

मिमी चुप थी।

टुकना ने सिर हिलाया, "हां!"

गहरी सांस छोड़ी। बाप का जीवन कठिन होता है। खून पानी बनाकर बच्चों का लालन-पोषण करो। बूढ़ा होने पर दुर-दुर कर हटा दे! सब माया है, झूठ है। आंखें छलछला आईं। वे उठकर चलने लगे।

प्रीति ने धोती पकड़ रोका, "बच्चों की बात पर ऐसा कर रहे हो? औरत से बढ़कर ओछी किसी की जिंदगी होती है? तुमलोग तो संन्यासी हो। ये सब पुरुषों का ही तो होता है। पर किसी में पुरुष को लोभ नहीं। और औरत? छिः, घर का कुछ नहीं!...जरा-जरा बात में औरत!"

"छोड़ो...छोड़ो!" सुदाम उठकर लिखने चले गए। उदास मन आकाश में आंखें टिकी हैं।

प्रीति गहरी नींद में सो गई।

मिमी व टुकना दोनों ओर जकड़े सो रहे थे। मिमी के पतले होंठ नीचे-नीचे में थरथरा जाते थे। टुकना के होठों पर बीच-बीच में मुस्कान उभर आती थी। चारों ओर निस्तब्धता। पड़ोस के बच्चे की तबीयत ठीक नहीं थी। वह रोता रहता था।

ठन्...ठन्...। जेल का घंटा बज उठा।

अचानक टुकना हड़बड़ाकर पूछने लगा, "दे, दे...मेरी बंदूक दे!"

"क्यों इतनी रात में बंदूक का क्या करेगा?" प्रीति ने हड़बड़ाकर पूछा।

"मां, बाघ मिमी को लेने आया है। उसे मारूंगा।" कहकर टुकना अपनी बंदूक लेकर दरवाजे की ओर चला।

प्रीति हंसकर पीछे-पीछे चली। पकड़कर कहा, "देखते हो, रात-दिन कलह करता रहता है! दोनों में कितनी ईर्ष्या है! सपना देखा कि बाघ पकड़ने आया है—तो बाघ को मारने जा रहा है।"

अमृत पुत्र

"भीतर जाने का टायम खत्म हो गया?"

मुड़कर देखा तो पास बैठे हैं गेरुवे कपड़े पहने बाबाजी। कंधे पर झूला। आंखें लाल इतनी कि राज लक्षण साफ दिखे।

मेटरनिटी वार्ड के अहाते से सटकर जो घना टगर का पेड़ है, उसके नीचे एक बेंच है। जब वार्ड बना तब से है। कोई आसामी वहां प्रतीक्षा में है। कटोरे, टिफन-कैरियर वगैरह सामने रखे हैं। पति प्रतीक्षा कर रहे हैं। वार्ड में जाने का समय हो तो औरतों के लिए खाना लेकर अंदर जाएं। श्मशान की तरह यहां भी ऊंच-नीच, धनी-गरीब का कोई भेद नहीं।

रानी को वार्ड में छोड़कर वह बाहर आकर चिंता में बैठ गया। पहला प्रसव है। डॉक्टर के कहे मुताबिक डिलेवरी के लिए अपनी आमदनी का दो तिहाई खर्च कर चुका हूं। तरह-तरह की दवाएं, गोलियां, शीशी खरीदीं। रानी को आराम देने के लिए एक नौकरानी रखी। फिर भी डाक्टर का कहना है कि घर पर डिलीवरी कराना सुरक्षित नहीं है। प्रसव वेदना की सूचना मिलते ही रानी को वार्ड से ले आया। वार्ड में बीच-बीच में तैर आता है वेदना का स्वर, कभी शिशु का स्वर, नव जन्म की क्षीण जयध्वनि!

ना, यह पहला और यही आखरी है, इतना कष्ट! रानी की इच्छा है संतान की, इतनी जल्दी, इनमें जरा विचार नहीं...

बिखरे विचारों का धागा बाबाजी के स्वर ने तोड़ा, "नहीं...लेडीज...आप क्या..."

"एक बीड़ी तो पिलाइए..." मेरी बात का उत्तर देने की बजाय हाथ फैला दिया।

जेब से बीड़ी निकाली। आदतन एक अपने मुंह पर रखने जा रहा था। बाबाजी ने रोका, "लाइए, बीड़ी तैयार कर दूं!"

"नहीं" कहकर बीड़ी सुलगा ली। बाबाजी ने झोले से गांजा-सा निकालकर बीड़ी के सिरे को तोड़ा। मसाला मलने लगे। इसके बाद उसे बीड़ी में भर दिया।

सुलगा ली। आकार वही, परंतु प्रेरणा शक्ति में परिवर्तन आ गया। ऊपर देख एक नमस्कार किया। एक कश आंख मूंदकर खींचा। तिहाई बीड़ी एक सांस में जल गई। आंख मूंदे बैठे रहे। इतना धुआं पता नहीं कहां गया! महाराज ने धुआं को शरीर में पानी कर दिया? अरे...ये पतली रेख धुआं नाक से आ रही है! धुआं निकल जाने के बाद बाबाजी ने आंखें खोलीं, "हलुवा!"

खीझकर कहा, "यहां हलुवा कहां से आएगा?"

"नहीं...बाबू, तुमने पूछा कि मैं यहां क्यों आया, उसका स्वर है।"

"हलुवा क्या?"

"हलुवा नहीं जानते? एक मुनि घोर तप कर रहे थे। एक औरत ने उनसे विवाह की इच्छा की। मगर मुनि ने उसे झिड़ककर विदा कर दिया। औरत ने बिगड़कर कहा, 'देखें तेरे तप में जोर ज्यादा है या हम औरतों में?' मुनि ने पेड़ की छाल के सिवा कुछ नहीं खाया था। मुनि जिस पेड़ की छाल खाता, वहां वह औरत हलुवा लेप आती। मुनि को मीठा लगता। वह अधिक छाल खाने लगा। सुसरे का पेट बिगड़ गया। बीमार पड़ गया। औरत ने जाकर सेवा की। धीरे-धीरे मुनि का मन बदलने लगा। अंत में सबने आश्चर्य से देखा—जंगल से मुनि आ रहे थे! एक कंधे और कमर में दो कड़े थे। दूसरे कंधे पर घर के लिए हर तरह का सामान। औरत आगे-आगे चल रही थी।—बाबू, हमने भी ऐसा हलुवा खाया है। मजे में फिरता हूं। हरि नाम लेकर पेट भरता हूं। मेहनत कर खाना होगा। हाय, मेरा क्या किया भगवान?"

सब हंस पड़े।

वार्ड से रानी की करुण आवाज सुनकर मैं दौड़ा। दरबान ने हाथ उठा रोक दिया। मैं लौट आया।

चीख सुनने के सिवा कोई चारा नहीं। दो दिन-दो रात कष्ट भोगा। नर्स मुझे छोड़ चली गई। तीसरे दिन अनुमति मिली थी। हर बेड पर औरत तथा बच्चा।

"रानी कहां?" छाती धड़क गई।

"इधर!" क्षीण स्वर में बुलाया।

गोद से चादर हटा मेरी ओर गर्व से देखा। चेहरे पर अपूर्व संतोष की आभा खिल रही थी। दो दिन दो रात तक मरणांतक पीड़ा सहती रही। मैं आश्चर्य में उस ओर देखता रहा!

"मुझे क्या देखते हो? इधर देखो!"

बित्ता भर सफेद जीव! मेरी ओर टिमटिमाकर देखा होगा। उसकी आंखें मुंदी हैं। मेरे जैसे हट्टेकट्टे आदमी की संतान! कुछ लाज-सी लगी।

पूछा, "बच जाएगा तो?"

'हूं', रानी ने ठुमककर कहा, "पहले यहां से निकलें। फिर देखना महीने

भर में यही हमारा वंशधर होगा!"

"हां, वंशधर! अतीत-भविष्य के बीच का सेतु! पर यह जरा-सा जीव!" संदेह छुपाने के लिए मुंह फेर लिया।

उर्मिला को देख चौंक गया। कालेज में साथी थी—उर्मिला, उग्रचंडी—जैसी सुंदर वैसी चंडी! प्रेम निवेदन की कोशिश में कई युवक चप्पल खा चुके थे। विवाह की बात पर हड़कती, "मैं राम-दामा की मां बनने के लिए नहीं हूं।" वह उर्मिला यहां!!

"नमस्कार!" उर्मिला ने मुस्काकर हाथ हिलाकर बुलाया।

विह्वल हो हाथ उठाकर उत्तर दिया। रानी के पैतानी वाली बेड पर वह लेटी है। उसने भी गोद से चादर हटाकर संतान दिखाई। खूब सलोना शिशु!

पास जाकर कहा, "खूब सुंदर है! मगर...आप—?"

"हां, ताज्जुब कर रहे हैं? इसमें ताज्जुब की क्या बात है? यही तो हमारी यात्रा का शेष है।" फिर चादर उठाई।

कौतुक न सम्हाल सका। पूछा, "कौन...नवीन?"

"छिः उन्हें?"

"आप दोनों तो हर सभा, हर आंदोलन में आगे रहते थे। हमलोगों ने तो समझ लिया था कि..."

"ना ना परमानंद...ओ...नाम ले लिया मैंने तो..."

"परमानंद...वो निर्जीव...अस्तित्वहीन...!!"

"जो बाहर दुर्दांत दिखते हैं, वे कितने कमजोर होते हैं...आप नहीं जान पाएंगे...मैं जानती हूं!"

"पर आप नवीन के पीछे जिस तरह थीं, हमारा तो ख्याल था वह न मिला तो आत्महत्या कर लेंगी...नवीन हमेशा यही कहता..."

"पता नहीं आप क्या सोचते हैं। कोई कुछ कहे, मैंने जीवन में इतना जाना...हमलोग पुरुष को आकृष्ट करने की चेष्टा करती हैं, यौन लालसा में नहीं। हमारे जीवन में हर विप्लव की शांति यहीं है। मातृत्व के लिए ही हमारे शरीर का सौंदर्य होता है। अतः पुरुष को आकृष्ट करने का दुर्वार पथ यही है। आजकल धन जैसे सुख का साधन होने के वजाय अपने आप में उद्देश्य बन गया है, हममें वैसे ही विकार आ गया। कई तो आकृष्ट करने भर के लिए मरने तक सज-धज कर रहती हैं। कैसा वीभत्स विकार, उस बेड पर देखें..."

रानी के दाहिने बेड पर एक नारी लेटी है। गैरिकवसना! गले में तुलसी की मोटी-मोटी माला। माथे पर तिलक। हाथ व भुजा में रुद्राक्ष का गहना। एकदम काली, तोरई के बीज की तरह। जगह-जगह धवलकुष्ठ के चिह्न चेहरे को और भी बिगाड़ रहे हैं। फिर भी वेश-भूषा की परिपाटी में या स्वास्थ्य में, कहीं एक नग्न आह्वान है। पास लेटा है एक स्वस्थ शिशु!

"यह कौन?" पूछा।

"उस सुंदर बच्चे की मां!" उर्मिला ने कहा। बाकी परिचय बेकार है।

टगर के नीचे वाले बाबाजी वहां आकर खड़े हुए। झोले में से कुछेक फल निकालकर बेड पर रखे। वार्ड वाले मुंह मोड़ हंसने लगे। एक वीभत्स रसिकता करने को मन कर रहा था। मगर बाहर निष्ठावान धार्मिक की तरह कहा, "छिः संन्यासी होकर..."

माताजी सब सुन रही थीं। मेरी धिक्कार तथा औरों का विद्रूप, हल्की मुस्कान में उड़ा दिया। हल्के-हल्के संतान को सहलाने लगी। बाबाजी सिर नीचा किए खड़े रहे।

"छिः, उसकी वेष-भूषा में जो आह्वान है, अंगभंगिमा में जो आकर्षण है, वह यौन लालसा का है? मातृत्व का आह्वान है!"

"डाक्टरजी, जरा बोलो ना! पेट में बच्चा है! ठीक से देखो, मुझे लगता है...बच्चा है, यह हिल रहा है!"

करुण आवाज! मुड़-मुडकर देखा, बाईं बेड पर एकदम दुबली औरत लेटी है। बाल पंखे में फर-फर उड़ रहे हैं। आंखें धंसी हुईं। गाल एकदम पिचक चुके हैं। पर सबसे हटकर मोटा पेट दिख रहा है। घृणात्मक दया आ रही है।

लेडी डाक्टर ने जांच की। कहा, "पेट में बच्चा नहीं, एक गोला है।"

महिला ने चिढ़कर कहा, "तेरा सिर है! ये हुआ तब से माहवारी बंद है। और तू कहती है कि बच्चा नहीं! बाबू, जरा ठीक से देखो!" फिर वही करुणा।

लेडी डाक्टर की नर्स ने आंख से इशारा किया। ठीक से जांचकर फिर कह दिया, "हां, बच्चा है!"

"जीती रह बेटी! सुहागन हो, हजारी उमर हो! खूब बाल-बच्चों वाली हो! थोड़ा और देखना...बेटा है या बेटी?"

लेडी डाक्टर ने गहरी सांस ले मुंह फेर लिया। उसके सांस में आशीर्वादों की अनुभूति मिल गई। फिर जांच का नाटक कर कहा, "बेटी!"

"ठीक है। क्या बेटा, क्या बेटी! मां बासलेई! तुझे दो सिल बलि में दूंगी। चैन से ये काम हो। मेरी बेटी सलामत बाहर आ जाए।"

लेडी डाक्टर ने पीठ सहलाई, "बड़ी बेटी है! पेट चीरकर निकालनी होगी।"

"ठीक है, चीर-फाड़ जो करना है, करो! यह बेटी बच जाए!" उसने हाथ जोड़ ऊपर की ओर देखा।

शिशु की आवाज से अचानक अजीब दृश्य हो गया। दस-बारह शिशु एक गाड़ी में लिए धाय आ रही थी। ताज्जुब में पूछा, "ये बच्चे एक के हैं?"

रानी हंस उठी। ऐसा होता तो अच्छा होता। फोटो निकली है, देखी है? आस्ट्रेलिया की औरत ने नौ बच्चे जने हैं। दो मर गए। पति को चुम्मा देते समय

की फोटो उठी है। कितने आनंद में पत्नी उसे देख रही है!

अच्छा होता! भय से आंखें मूंद गई। माल्थूस साहब को जैसे किसी ने लाठी मारी हो। चीखकर गिर पड़े। कालेज लाइब्रेरी के रैक में इकनामिक्स की किताबें धड़ाधड़ गिर पड़ीं। आंख मूंदे कहा—शेक्सपियर के नाटक में ज्योतिषी ऐसे ही कहता है। एक महिला ने पूछा, "मेरे कितनी संतानें होंगी?" ज्योतिपी ने कहा, "तुम्हारी हर इच्छा पर गर्भ रहे तो लाख से ज्यादा।"

रानी हंस पड़ी, "ठीक कहा। यहां किसी को वह सौभाग्य न मिला। हर मां से बच्चा लेकर धाय बच्चों को धोने ले गई थी। अब लौटा रही है।"

आंख खोल देखा—हर मां बेड पर बैठी है। सब रुग्ण, पर सबकी आंखों में चमक है, कमनीय गर्व है, अपूर्व संतोष है। कोई पीड़ा में स्तन भींचे है। किसी का दूध बहाकर साड़ी गीली कर रहा है। सबके हाथ फैल गए। धाय एक-एक को परिवेषण करने की तरह अपना-अपना शिशु दे रही है।

एक महिला ने कहा, "मेरा-दुलारा!"

"आ रहा है, घबरा नहीं।"

"जल्दी ला। मेरा मन विकल हो रहा है।"

रानी ने कान में कहा, "शायद उसका शिशु नहीं है। नीला पड़ गया है—वात हो गया!" उसने आंसू पोंछ अपना हाथ संतान पर रखा। सारे आधिभौतिक आधिदैविक विपद से संतान को बचाने हेतु वह क्षीण हाथ काफी है।

"मेरा दुलारा...कहां है?" फिर वही करुण मिन्नत!

धाय ने लौटकर कहा, "उसकी तबीयत ठीक नहीं है। देख रही हैं। अभी आएगा, परेशान क्यों हो रही हैं?"

"ना-जल्दी ला! मेरा लाल कब से गया है...हे मां काली..."

"ठीक है, जा रही हूं।" धाय मुंह फेरकर आंसू पोंछ चली गई।

लेडी डाक्टर आई।

"सबके बच्चे आए! मेरा कहां? क्यों लिया? मैं मना कर रही थी। उसकी तबीयत ठीक न थी!"

और आगे बोल न पाई। वेदना में होंठ कांप गए। असहाय भाव से सबको देख मुंह ढांप लिया। सबकी संतानें लौटीं। उसकी नहीं। यह लज्जा उसे जला रही है। स्तनों से दूध बहकर साड़ी भिगो रहा है।

लेडी डाक्टर ने पीठ पर हाथ रखा।

"बच्चे का पिता कहां है?"

"मेरे लिए खाना लाने गए हैं।"

वे चली गईं। चारों ओर स्तब्धता। सब सांस रोके देख रही हैं। आंसू पोंछ लिए। कुछ समय बाद उसके पति खाना लेकर आ गए। लेडी डाक्टर ने इशारे

से बुलाया। अब महिला सब समझ गई। "मेरा लाल" कहकर चीखी, तकिए को भींच बेहोश हो गई।

मैं रुक न सका। सृष्टि के उस अद्भुत प्रसूतिगृह में। बाहर चला आया। यथार्थ में लौटने के लिए बेंच पर पड़ा अखबार खोल ले लिया। आज की मुख्य खबर है—

"विज्ञान का अद्भुत अविष्कार! एक हाइड्रोजन बम से करोड़ों लोग पल भर में मारे जा सकते हैं!"

तीसरा महायुद्ध छिड़ेगा?

दोनों पक्ष तैयार हो रहे हैं! सैनिक साज-बाज बढ़ाने के लिए हर माता-पिता को संतान पैदा करने के लिए आर्थिक पुरस्कार!"

अखबार मोड़-माड़कर फेंक दिया।

बट महापुरुष

आप कभी नरीपुर की तरफ गए हों तो, जरूर बट महापुरुष को छाया तले बैठ विश्राम किया होगा। हाय! वे महापुरुष अब और नहीं रहे! लोगों के चक्कर में पड़ इह धाम छोड़ना पड़ा!

नरीपुर गांव के छोर पर बट महापुरुष का ठिकाना है। विशाल महीरुह। अगणित जटा झूलती और फिर खंभे बन गई हैं। कोई एक एकड़ जमीन में फैले हैं बट महापुरुप। नीचे साफ-सुथरा, मानो पक्का फर्श हो। महापुरुष के नीचे से सड़क निकली है पश्चिम से पूर्व की ओर। पूरब में डीहसाही, दैतापुर, धनुवा, गमरा आदि गांव हैं। पश्चिम में नया गांव, नयापाटना, अहमदपुर आदि है। ये सब गांव नरीपुर के आस-पास ही हैं।

सड़क के उत्तर की ओर नरीपुर गांव का मशान है। वहां बड़े-बड़े कितने नरमुंड, फटा कंथा, तकिया पड़ा है। और भी पड़ेंगे। बीच-बीच में बोल हरि...हरि बोल की आवाज से मशान कांप जाता है। लपलपाती चिता भभक उठती है। फिर सुनसान। गांव की औरतें रोना-चीखना कर हंडी-मटके लेकर जमा होती हैं। हंडी वगैरह वहीं फेंक पास के पोखर में नहा-धोकर फिर रो-पीट लौट जाती हैं अपने-अपने घर। एक-दो दिन रोना-धोना होता है। फिर थम जाता है। कुछ दिन बाद वही हंसी-ख़ुशी। मरा, सो गया। और उसकी देह नरीपुर की माटी में मिल घास गयश पेड़ को खाद देगी। और आत्मा? ख्रिस्तान कहेंगे—हर आत्मा विराट घर में जाकर प्रतीक्षा करेगी। कल्प के अंत में उनका विचार होगा। कोई अनंत काल में नरक जाएगी, कोई स्वर्ग। नास्तिक कहेगा—भस्मीभूतस्य देहस्य आत्मा कहां से आई? गीता कहती है—आत्मा अमर है। पंडित जो भी कहें, नरीपुर वाले कहेंगे—प्रत्यक्ष प्रमाण मिला है। अनेक भस्मीभूत देह भूत बनकर अपने घर या घर के लोगों की माया न छोड़ बट महापुरुप में आराम किए हैं। उनकी स्वर्ग जाने की इच्छा नहीं। यही लो, उस दिन अन्ता, कच्ची जवान, बहू को छोड़कर एक दस्त में चल बसा। यही मशान में बहू रो-रोकर मुरछा गई। शवदाह कर लौटते समय लोगों ने देखा—बट महापुरुप की मोटी डाल चरमरा कर टूट गई। कोई आंधी या तूफान न था। सब जान गए कि बहू की माया छोड़ नहीं पाया, बट महापुरुष की डाल पर ठिकाना

बनाकर रह गया है। महीने भर बाद ही अन्ता की बहू राम प्रधान के साथ कलकत्ता भाग गई। लोगों में काना-फूसी हुई, बात भी खुल गई, राम प्रधान की कुशिक्षा में पड़कर बहू ने उसे जहर देकर मारा है। अंता अब भी उस डाल पर है, लोग देखते हैं। ऐसे कई भूत बट महापुरुष की देह में रह गए हैं, इसका कौन हिसाब रखे? रात में लोगों ने देखा है—अनेक भूत पेड़ से उतरते हैं, सड़क पर कहीं जाते हैं। सिर्फ नरीपुर वाले भूत ही वहां हैं, ऐसी बात नहीं। कहते हैं आस-पास के बीस-पचीस गांवों के भूत डेरा डाले हैं।

बट महापुरुष के नीचे धूप किरच भर या वर्षा बूंद भर नहीं पड़ती कभी। जाड़ों में भी उनके नीचे ऊष्मा रहती है—मां की गोद की तरह। घोर वर्षा में ग्वाले छोकरे गायों के झुंड खेत से या सड़क से इधर हांक लाते हैं बट महापुरुष के नीचे। गाय-बकरी आदि सैकड़ों जानवर सुरक्षित पेड़ तले सूखे में पांव पसार देह से देह सटाकर अलस मिटाते हैं। पागुर करते हैं। ग्वाले बट महापुरुष के रास्ते की तरह लंबी-चौड़ी डालों पर भाग-दौड़ मचाते हैं। कोई डाल पर लेटे-लेटे आनंद में गीत गाता है—

बाला कह तू किसकी अबला
इकली बैठी क्यों रोती है री!
कह तू किसकी बाला

कोई जटा से झूला झूल रहा है। गरमियों में चिलचिलाती धूप में बटोही चला आता है बट महापुरुष की ओर। बट महापुरुष के पास आते ही हवा का ठंडा झोंका स्वागत में आता है। बटोही माथे से बंधा साफा उतार पसीना पोंछता है। एक जटा के सहारे टिक कर घड़ी भर बैठ जाता है। फिर प्याऊ से ठंडी छाछ एक सांस में भर पेट पी लेता है। और फिर बट महापुरुष के एक पांव के पास पसर गहरी नींद सो जाता है। छाया ढलने पर उठता है। बट महापुरुष को पालगी कर फिर अपनी डगर पर चल पड़ता है। जाड़ों में महाजनों की माल ढोनेवाली तीस-चालीस बैलगाड़ियों की चरक-चूं आकर थम जाती है बट महापुरुष के नीचे। बाहर की ठंडी हवा छूती भी नहीं। बट महापुरुष कंबल जैसी ऊष्मा में सबको ढांप लेते हैं। सुबह उठकर वे बट महापुरुष का आस्थान साफ कर पालगी कर चले जाते हैं।

इन बट महापुरुष को लाए थे बट बिहारी। वे धार्मिक, सत्यवादी, निष्ठापरायण पर चुपचाप रहने वाले आदमी थे। गांव-गांव में कलह बढ़ने लगा, व्यथित होकर तप करने चले गए हिमालय की ओर। उस जमाने में समाज में कलह बढ़ने पर नेतागण दलबंदी, समाजवाद, कूटनीति, राजनीति, दांव-पंच नहीं करते थे। सबका पाप अपना पाप मानकर तपस्या करते, उपवास करते। तपस्या के बाद फिर धर्म आध्यात्मिकता की स्थापना में लग जाते। आज के युग में नेता प्रचार करते हैं—धर्म आध्यात्मिकता फेंक दो। वैज्ञानिक युग में हवन की जगह नहीं है। कल-कारखाने, उद्योग, व्यवसाय से पैसे कमाओ। वही जीवन का लक्ष्य होगा। धर्म फालतू की

कल्पना है। अर्थ यथार्थ है। कौन भला है, कौन ठीक है, महाकाल बताएगा। शायद मिथ्या ही सत्य है, सत्य ही मिथ्या है। शायद यह कल्पना आदमी को देवता, और वही सत्य उसे राक्षस बना देता है।

साल भर तपस्या कर हिमालय से लौट आए बटबिहारी वापस नरीपुर। साथ में बरगद की पौध लेकर। आस-पास के पचीस गांव के लोगों ने खूब उत्साह में और संभ्रम में बट महापुरुष की स्थापना की। सात दिन तक धूमधाम से भोज वगैरह चला। वही पौध बढ़कर आज विशाल पेड़ है। बट महापुरुष। उनके कारण सारे विवाद भूलकर फिर निकट आ गए उनकी सैकड़ों बाहु छाया तले। उनके वंश में कोई अब तक बट महापुरुष के नीचे गरमियों में प्याऊ खोल छाछ पिलाते हैं। बटमहादेव के नीचे विराजमान बटेश्वर महादेव की पूजा करते हैं। उनके वंश के बटसुंदरजी जब मंदिर में शिवाष्टक गाते हैं—

गिरिराज सुतान्वितवामतनु, तनुनिंदितराजित कोटिविधूम्
विधु खंडविमंडितभालतटम्, प्रणमामि शिवम्शिवकल्पतरुम्

अथवा रावण के शिवताण्डव स्तोत्र में गाते हैं—

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले,
गलेऽवलंब्यलंबिताम् भुजंगतुंगमालिकां
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकारचंडतांडवम् तनोतु नः शिवः शिवम्

तब तक मंदिर के अंदर सरगरमी हो जाती। बट महापुरुष भी भावावेग में सिहर उठते। बटसुंदर का मरणशील कलेवर भी नरीपुर मशान में मिल चुका है। परंतु वह भी नरीपुर की माया न छोड़ पाए, टिक गए बट महापुरुष की देह में।

हर वर्ष दूज के पर्व पर बट महापुरुष की आराधना, स्नान होता है। पूजा होती है। ढोल-महुवरि बजते हैं। गुड़ के पने का भोग लगता है। गांव की औरतें हुलुध्वनि कर शंखध्वनि करें, तो बट महापुरुष आनंद में कंपायमान होते हैं। स्नान होता है। धूप-झूना की महक में बट महापुरुष का स्थान गमक उठता है। फिर चलता है भोज। पचीस गांव के लोग, यहां तक कि अहमदपुर के पठान भी, साथ बैठकर खाते हैं। रात-दिन बट महापुरुष के नीचे मेला, बादी पाला, दुकान, बाजार बैठता है। ऐसा उनकी वार्षिक पूजा में होता है, मगर किसी के बाल-बच्चे हो, मनोकामना पूरी हो, बेटा नौकरी पा जाए, शादी-ब्याह हो, तब भी उनकी पूजा होती है। इस तरह पूजा लगी रहती है वर्ष भर। बट महापुरुष को केंद्र में कर पचीस गांव के लोगों में भेदभाव मिट गया, सभी मिल-जुलकर चलते हैं।

हिमालय का यह महीरुह हिमालय की तरह नरीपुर सीमा पर तथा पचीस गांवों के बीच में चार पीढ़ी से है।

नरीपुर गांव के मशान के उत्तर में हलदिया गांव है। बड़ा गांव है। यहां के

लोग नरीपुर वालों से कुछ अधिक शिक्षित हैं और मालदार भी हैं। नरीपुर का एक यू पी स्कूल अब तक माइनर स्कूल नहीं हो पाया। जरूरत ही नहीं पड़ती। क्योंकि वहां के बच्चे "कला कलेवर कन्हाई संग रोहिणी सुत..." गीत सीखते न सीखते बैल की पूंछ मरोड़ 'हे हे...स्साला बैल मेरे...' कहते हुए खेत की ओर दौड़ते हैं भोर में। मगर हलदिया का माइनर स्कूल कब का हाईस्कूल बन गया है। कुछ ही दिनों में कालेज बनने जा रहा है। हलदिया के ज्यादातर लोग तो चाकरी वाले या व्यापारी हैं। उनमें कई तो ऊंचे-ऊंचे पदों पर हैं। विधान सभा के मेंबर, सरपंच, पंचायत समिति के चेयरमेन तक हैं हलदिया वाले। नरीपुर में तो खाली झुके धान-फूस के घर हैं। आदमी के रहने के घरों जैसे तो गाय-गोरू के बाड़े हैं। हलदिया में अनेक पक्के घर बन चुके हैं।

मगर नरीपुर का गर्व बट महापुरुष हैं। कितना ही बड़ा गांव हो, सिर नवाना होगा नरीपुर वाले बट महापुरुष के आगे। कल्पतरु हैं!

मगर इससे क्या हुआ? युग बदला है। पंचायत राज चल रहा है। लोग शिक्षित हो चुके हैं। देश के भगीरथ विदेश से धन का स्रोत मोड़कर दिल्ली की ओर ला सकते हैं। वहां जमा कर फिर मोड़ते हैं राज्यों की ओर। फिर राज्य से हर गांव को स्रोत घूमता है। किसी-किसी राज्य वाले भगीरथ विदेशों से सीधे स्रोत अपने राज्य की ओर लाने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ कपटी महादेव या जाह्नु मुनि उस स्रोत को जटा में छुपा लेते हैं या चुल्लू कर लेते हैं। पर इससे कुछ आता-जाता नहीं। स्रोत तो आ रहा है। कौन कितना छुपाता है, छुपाए, कौन कितना चुल्लू करता है, करे। देखा जाएगा बाद में। क्या परवाह है?

मगर, कुछ गोलमाल हो गई। फायदा न उठा पाने वाले लोग अचानक देशप्रेमी हो गए, सिर पर सफेद टोपी लगाई, कंधे पर झूला लटकाया, घुटनों तक मोटी धोती पहनी। नरीपुर के बटकृष्ण ने एक दिन ऐसा वेश बना लिया। वे कलकत्ते में जूट मिल में कोई काम करते थे। गीध की तरह मुर्दे की गंध पाकर कलकत्ता छोड़कर, सीधे गांव में आ जमे। पल भर में हृदयंगम कर लिया कि जो स्रोत हलदिया जा रहा है, उसकी एक धार नरीपुर लाने में काफी बुद्धि खरच करनी होगी।

पहले 'बट महापुरुष उन्नति समिति' की स्थापना की गई। सभा जुटी। पच्चीस गांव वालों ने सभा में भाग लिया। नियम बना कि हर गांव वाला महीने में एक आना चंदा देगा। जो बट महापुरुष की स्पेशल पूजा कराएगा, वह दो रुपया देगा। हर चैत में बट महापुरुष के नूतन किसलय के समय जो पत्तों का ढेर जमा होता है, उसे धोबिन, मालिन यों ही मुफ्त में नहीं ले सकेंगी। फी टोकरी एक पैसा महसूल देना होगा।...इत्यादि!...बटकृष्ण को समिति का सेक्रेटरी बनाया गया। काफी पैसा जमा हुआ। बट महापुरुष के चारों ओर विशाल चबूतरा बनाया गया। हर जटा के चारों ओर और भी छोटे-छोटे चबूतरे बने। साथ में बटकृष्ण का आश्रम बना।

एक और अभिनव उपाय से बटकृष्ण ने बट महापुरुष की आय बढ़ाई। अहमदपुर के जानमुहम्मद गणकवि हैं। 'सास-बहू कलह', 'कटकी बहू' आदि कविता छपवाकर गांव-गांव फिरते हैं, बेचते हैं। अन्ता की बहू द्वारा अन्ता को जहर देकर मारने और रामा प्रधान के साथ कलकत्ते भागने की कहानी कविता में लिखकर छपवाई है। गांव-गांव में बांट रहे हैं। उसकी खूब बिक्री हुई। हर गांव की बहुओं ने पढ़ा। बटकृष्ण ने 'बट महापुरुष महात्म्य' लिखकर प्रचार करना शुरू किया। उसमें 'टेक' थी 'दीन सेवक बटकृष्ण'। बट महापुरुष की तरह-तरह की आलौकिक कहानियां चलीं। भक्तों की, मंत्रियों की संख्या बढ़ी। बटकृष्ण को भी कुछ पैसा हाथ में मिला। बट महापुरुष के साथ बटकृष्ण की महिमा भी प्रचारित होने लगी।

बटकृष्ण ने अंगुली प्रवेश किया पंचायत का साधारण सदस्य बनकर। कुछ दिनों बाद बात फैली कि सरपंच के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव आएगा। सरपंच हैं हलदियापुर वाले बटुक। उनके दुमंजिले की छत पड़ी नहीं कि वे परेशान हो गए। बटुक मामलाबाज ठहरा। कानून-कचहरी के जरिए वे दांव साधते हैं। उनकी मुट्ठी में साक्षी हैं—अदालत में शपथ लेता हूं कि जो कहूंगा सच कहूंगा, झूठ कुछ नहीं। कुछ छुपाना नहीं—जोड़कर अनर्गल झूठ बोलते जाते हैं। जिरह में पकड़ाई में आने पर बेलज्ज होकर कह देते हैं, झूठ-साखी के बाद दो रुपया पारिश्रमिक लेकर होटल में मुफ्त खाकर घर लौटते हैं। जज बिचारा जबान बंदी पढ़ते-पढ़ते सोचता है—

चंद्र न दिखता मेघाच्छन्न होकर,
मिथ्या वचन में सत्य छुपकर

अतः बटुक से सब डरते हैं। पंचायत सभा होने से पहले बटकृष्ण के नाम पर नारीधर्षण, चोरी, ठगी आदि बड़ी-बड़ी आइ. पी. सी. की पांच धाराएं लगाकर मामला जोड़ दिया। बटकृष्ण, बट महापुरुष के आगे पसर गए। और जोर-जोर से बट महापुरुष के महात्म्य का प्रचार किया। बट महापुरुष फंड से मुकदमे का खरच चला। साखियों को तोड़ा। पंचायत सभा में बटुक हार गया। बटकृष्ण बने सरपंच। पर बटकृष्ण ने कहा, "ये तो बट महापुरुष की जात है।" नरीपुर-हलदिया का कलह बढ़ गया। इतना ही नहीं दोनों गांवों की खाई चौड़ी हो गई।

बटुक ने कमर कसी। अविश्वास प्रस्ताव लाने पर तुल गए। मेंबरों को पैसा देकर रातों रात ट्रक में भुवनेश्वर जाकर मंत्री के पास शपथ कराई, लिंगराज का महाप्रसाद छूकर शपथ कराई। रातों रात वापस आया।

नीचे-नीचे चली मछली
अड़ोस पड़ोस न जाने कुछ भी

मगर लिंगराज का प्रभाव नरीपुर तक नहीं आता। यहां तो बट महापुरुष सर्वेसर्वा हैं। दासकाठिया दल, पाला वालों का दल, जानमुहम्मद...सब गांव-गांव

फिरकर बट महापुरुष का महात्म्य गाकर बरगद संकेत पर पंचायत समिति के चेयरमेन के पास पहुंच गए।

अब बटुक को होश आया। पहले बट महापुरुष का महात्म्य घटाना होगा।

अचानक देखा हलदिया के मशान में एक बाबाजी डेरा जमाकर बैठे हैं—बटिया बाबा! प्रचार हो गया—बटिया बाबा महान काली साधक हैं। अमावस रात में वे शव साधना करते हैं। वीर प्रेपण करना जानते हैं। बटुवे में से जरा-सी हवन की राख देकर रोग ठीक करते हैं। कुछ दिन में पचीस गांव वालों में खबर बिजली-सी फैल गई। भीड़ होने लगी बटिया बाबा के यहां।

कुछ दिन बाद एक आतंक फैल गया। आधी रात में कुछ घरों में पत्थर, गू लगे कंकड़ गिरने लगे। पता ही नहीं चला। बटिया बाबा के पास गए—कारण जानने। बाबा ने पूजा की। पता चला। लोग अवाक हो गए। बात यह है कि आज तक पच्चीस गांव के भूत बट महापुरुष में एकान्नवर्ती परिवार की तरह भोग दखल करते रहे। अब नरीपुरिया भूत, गुंडे और दुप्ट प्रकृति के हैं, दंगाबाज व मामलाबाज हैं। दुर्भावना तथा अहमदपुरिया खवीसों के गलत परामर्श पर दूसरे गांव के भूत बट महापुरुप से बेदखल करने पर भी दूसरे गांव अनाथ होकर स्थानाभाव में उपद्रव करते हैं। उपाय? हर गांव में एक-दो बरगद लगाकर भूतों को बसाना होगा। ठीक है, ठीक है! बात सबको जंच गई। बटुक के मुख्य साखी व सहकर्मी धुलिया ने एकांत में बटुक से पूछा, "जी, नरीपुरिया भूतों के नाम पर 147, 447, 426, 323, 500, 504, 325, 354, 379, केस लिए जाएं तो कैसा रहे? डाक्टर तो है, डाक्टरी सार्टिफिकेट देने लगे? मार का रंग गड़बड़ कर दे, वरना अच्छा सार्टिफिकेट दें। साखी का जुगाड़ करना होगा। बटुक ने गुस्से में कहा, "भाग स्साले!"

बात हुई कि बटिया बाबा पहले हलदिया गांव में बरगद लगाएंगे, हलदिया मशान में। यह होगा 'बट महाराज'। जुगाड़ चला। बटुक गए गया...कल्पवट की डाल लाने। बटकृष्ण समझ गए बटुक का कायदा। वे उसे व्यर्थ करने में जुट गए। उसमें ज्यादा दिन न लगे। नरीपुर की बटीबेवा, खास सुंदर न थी, पर बड़े-बड़ों को पटकनी दे कई को जेल से बचाया है। निहोरा कर कहा—खतरे से खेलनेवाली औरत दो-चार रात बटिया बाबा के पास आना-जाना किया, बटिया बाबा चले गए, नरीपुर में आश्रम जमाया।

बटुक गया से लौटे तो दृश्य बदला हुआ था, दांत पीसकर रह गए। गया से पौध नहीं ला सके। लोगों ने पूछा तो कहा, "राह में सपना आया बट महापुरुष की डाल से पेड़ न हो तो भूत किसी दूसरे बरगद पर न रहेंगे। हर गांव को अधिकार है बट महापुरुप से डाल लेने का। फिर वह पेड़ मेरा भी तो है, पांच वर्प पहले सपनी से पांच सौ रुपए जरसीमन में वह जमी कबाला की। वह पेड़ और जमीन पचीस गांव को दान कर रहा हूं। तुम सब जाकर एक-एक डाल लेकर अपने गांव

में लगाकर भूतों से उद्धार पाओ।" गांव वाले बटुक प्रधान के महान दान पर चमत्कृत थे। बात सबको भा गई। बात गुप्त रखी गई।

रात आधी। बट महापुरुष के आश्रम में धम-धम आवाज आने लगी। दौड़कर बटकृष्ण ने देखा—हलदिया और अन्य लोग बट महापुरुष की डाल काट रहे हैं। तुरंत खबर नरीपुर में फैल गई। देखते-देखते लाठी, बल्लम, कटार, कुल्हाड़ी लेकर गांव वाले जमा हो गए। उधर से भी कुछ आ गए। कुल्हाड़ी की चोट से थरथराकर एक और बड़ी डाल टूट पड़ी। बटेश्वर महादेव मंदिर में शब्द गूंज उठे। मानो महाकाल गरज उठे।

फिर दो दलों में मारकाट शुरू हुई। बट महापुरुष बार-बार थरथराने लगे। काल भैरवी ने मानो आवाज दी हो। बटेश्वर मंदिर से हो-हो आवाजें आ रही हैं। तभी अहमदपुर के आठ-दस मुसलमान खांडा फिराते दौड़े आए। बटुक उन्हें पैसे देकर जागते रखे था। अहमदपुरिया का गुस्सा नरीपुरिया के ऊपर। क्योंकि बटकृष्ण ने अपनी सीख में मुसलमानों को बट महापुरुष से छिन्न कर दिया था। मुसलमानों को खांडा लेकर दौड़े आते देख सब छितर बितर हो गए।

जाते समय धुलिया ने, बटुक के सिखाने पर बट महापुरुष के सामने कटु बिष गाड़ दिया।

अगले दिन देखा—आठ लाशें बट महापुरुष के पास पड़ी हैं। पंद्रह गंभीर घायल हैं। जो थोड़े जख्मी थे, वे किसी तरह भाग आए।

पुलिस आई। बट महापुरुष के आस्थान पर 144 धारा लग गई। गांव से करीब सौ को हथकंड़ी डाली गई। बटुक व बटकृष्ण भी पकड़े गए। धुलिया भूतों पर कई दफाएं लगाकर मुकदमे चलाने की बटुक को सलाह दी गई। हत्या का मुकदमा लगा, 302 दफा लगाई गई। लाश देखकर चील-गीध कुत्ते की तरह टाउटरों की भीड़ लग गई। रुपए की लूट मची, दोनों ओर आग पकड़ने लगी।

इस घटना के कुछ दिन बाद बट महापुरुष मुरझा गए। विराट महीरुह मानो ध्यान में हों। अतीत याद कर भविष्य के चिंतन में हों। महाकाल ने भी लोक कल्याण हेतु विषपान किया था। बट महापुरुष ने बटेश्वर महाकाल को याद कर महाप्रयाण किया। नारायण प्राप्ति नहीं, सीधे-सीधे हत्या का मामला है। पर पेड़ में क्या प्राण हैं जो उन्हें मारने पर 302 दफा लगाएगा? कोई बोलने वाला तक नहीं।

सरकार ने पेड़ नीलाम किया। नरीपुर-हलदिया वालों में लेने की ताकत नहीं थी। आग में सारा पैसा बरबाद हो गया है। अहमदपुरी मुसलमानों ने नीलाम पर लिया। बाकी गांव वालों ने घूसघास देकर चोरी-छुपे उठा लिया। दो दिन में सब साफ। बट महापुरुष का वह स्थान सूना हो चुका था। एक सभ्यता गई। दूसरी आ गई। कुछ डरना नहीं। महाकाल सदा जाग्रत हैं।

आज भी रात में बटबिहारी को लोग फिरते हुए देखते हैं। उनकी खड़ाऊं की खट-खट और गहरी सांस सुनाई देती है।

लड्डू

चौधरी बाजार पार करने के बाद परेश बाईं ओर फिर मुंह नहीं करते। थैला हिलाते हुए तेज कदम आगे डालकर निकल जाते। देखने पर लगता, मानो बाईं ओर गरदन मुड़ी है, हवा अटक गई है। म्युनिसिपैलिटी बाजार पार करने के बाद मुंह फिराते। आज एक गाय सींग हिलाती आ गई, चौंककर देखा—एक मुस्टंडा-सा सांड सूं-सां करता उधर आ गया। परेश जान लेकर दुकान पर चढ़ गए। बाजार के शोहदे फें-फें कर हंसने लगे। "इधर बाबू सीधे लपक रहे हैं, गाय गरमाई है, निगाह ही नहीं!"

परेश को सारी बातें सुनाई नहीं पड़ी। उनकी छाती धड़क उठी। कान लाल पड़ गए। माथे पर पसीने की बूंदें झलक आई। भय में नहीं, लोभ में। खूब लोभ! इस लोभ के चक्कर से बचने तो रोज बाजार जाते समय इस दुकान को देखे बिना शीघ्र चले आते हैं। म्युनिसिपैलिटी जाने के कई और रास्ते भी हैं। परंतु परेश इस रास्ते से गए बिना नहीं रह पाते। पांव इधर मुड़ जाते हैं। खींच लाते हैं वे लड्डू। आज लोभ अदम्य हो गया। लोभ के साथ पहली इंद्रिय भी जाग उठी।

वाइसराय लार्ड केनिंग की पत्नी लेडी केनिंग लोभ में पड़ी थी। किस जमाने की बात है, लार्ड एवं लेडी खाद बनकर ब्लेक बेरी या स्ट्राबेरी बनकर फल दे चुके, वह फल फिर किसी में प्रवेश कर वह आदमी बड़ा हो, मरकर कितने जन्म पा चुका होगा। ब्रिटिश राज गया, भारत स्वाधीन हुआ। मगर लेडी केनिंग अमर रह गई अपने लोभ के कारण। धन की कमी न थी। लोभ में पड़ एक मिठाई खरीदकर खूब खाने लगी। उसके नाम से उस मिठाई का नाम ही पड़ गया लेडी केनिंग या लेडी केनि!

परेश लोभ के कारण अमर नहीं हो सकेंगे। वाइसराय या हेडक्लर्क तो दूर, मामूली क्लर्क भी वे नहीं हैं। कचहरी में पचास रुपए वेतन वाले क्लर्क हैं। उनके बजट में जो कुछ है—उनमें रसेंद्रिय का कोई काम नहीं। जीभ है—सिर्फ निहोरा करने के लिए—पत्नी के आगे, हाकिम के आगे, महाजन के पास या भगवान के पास। वैसे निहोरों का फल सदा समान है।

धर्मपत्नी का हुक्म है—रोजाना बजार के लिए आठ आने से ज्यादा नहीं। उसमें क्या लाए, क्या नहीं यह भी कहने का एकाधिकार पत्नी का है। जो लिस्ट

देंगी, उसमें पैसा बचाकर पान लेना भी कठिन है। एक बार सहजन साग से एक पैसा काटने को कहा, पर दुकानदार ने जो अपमान किया, बाद में कभी कुछ कहने की हिम्मत न हुई। एक बार हरी सब्जी, सेर की जगह तीन पाव लेकर, दो पैसे की सिगरेट खरीदी। मजे में धुंआ उड़ाते घर लौटे। पत्नी साग देख अचंभे में आ गई। पड़ोसन से तराजू-बटखरा लाकर वजन किया। कम देखकर जो वाक्यवाण छोड़े! परेश क्षोभ और दुःख में मन ही मन हंस पड़े। दूसरे कवि तो नयनवाण की बात ही लिख गए हैं।

दुकान के ऊपर उठ गए। लड्डुओं की ओर देखा। कार से एक सज्जन उतरकर आए। सेर भर खरीदे, अंदर बैठी महिला की ओर बढ़ा दिए। उनकी आंख और पतले होंठ आनंद में भर गए। वे तेजी से चलने को हुए। पर पांव जम गए। आंखें मिठाई पर जम गईं। महक से नाक भर गई।

'बैठिए, कुछ दूं?''—दुकानदार ने पूछा।

''ना...वो सांड़ भागा...''

''वो तो गया...''

अब दुकान में रहने का कोई मतलब न था। मगर बाहर जा भी नहीं पाते। ऐसी कोई नई मिठाई न थी, वही पीली बूंदी के गोल लड्डू। बस बीच-बीच में एक-एक लाल दाना, बीच-बीच में एक दो किसमिस कुछ पिश्ते। यह रंगों का समावेश ऐसा सुंदर कि लड्डू का आकर्षण बांध ले। वैसे इस दुकान में लड्डू जैसे सजे हैं, वैसे और दुकानों में नहीं सजे होते। बंदिंग सूट पहने, पुष्ट नितंबिनी नारी थाली को अपने घने वक्ष के किनारे थामे अर्पण की भंगिमा में खड़ी है!

परेश ने दो-तीन बार उधर देखा। वे दुकान से उतरने को हुए। लगा काच की आलमारी से वह मूर्ति खिलखिलाकर हंस रही है—कर रही है—'आइए!' परेश के कान लाल हो गए। एक सज्जन लड्डू लेकर जा रहे हैं। मिठाई कह रही है—नाहम् धनहीनेन लभ्य! दुकान से निकल सीढ़ी पर खड़े हो गए। रास्ते पर गाय चुपचाप खड़ी है—सांढ बार-बार गरदन चाट रहा है। बीच-बीच में चौंक जाता है। कनखियों से उधर देखा। फिर मिठाई की ओर देखने लगे। लोभ सम्हाल न पाए। ऊपर उठकर पूछा, ''इसके क्या दाम हैं?''

''दिलमोहिनी? छः रुपए।''

परेश ने हड़बड़ाकर कहा, ''मैं एक का पूछ रहा हूं।''

''एक के छः आने!''

दाम सुनकर अवाक मुंह सोचने लगे।

छः! दो आने होते तो दुकानदार को कुछ कह-सुनकर कम कराते। छः आने कहां से जुगाएं। छोड़ो!

एक-दो और आदमी दिलमोहिनी ले गए। परेश ने अलमारी की ओर झांका।

नितंबिनी की थाली में कुछेक लड्डू अभी और बचे हैं। नितंबिनी के बिंबोष्ठों पर और तीखे नयनों के आह्वान की मुस्कान। परेश ने मुंह मोड़ दूसरी ओर देखा। सांढ़ सफल हो गया है।

परेश मन में वैराग्य लाने की कोशिश कर रहे हैं।

...सर्वदा संयुक्त और तुल्य नामवाले दो पक्षी एक डाल पर आश्रय लिए हैं। उनमें एक विचित्र स्वाद वाले फल को भक्षण कर रहा है। दूसरा सिर्फ उसे देख रहा है। इस देह वृक्ष में मोह के कारण जीवन शोक करता है। जब वह विश्वव्यापी परमात्मा को हृदयंगम करता है, तब संसार लांघता है।

...पृथ्वी पर जितने जीव बनाए गए हैं, सबकी देह में पंचेंद्रियां हैं। अन्य जीवों में पंचेंद्रिय आकर्षण रोध शक्ति, बुद्धि या इच्छा नहीं है। पर मनुष्य ने इनके विरुद्ध युद्ध की इच्छा पाई है, पर इच्छा पूरी करने के लिए धर्म, दर्शन और आदर्श बनाया है। इनका जीवन धारण से कोई संपर्क नहीं। अतः इसे मिथ्या कह सकते हैं। पर इस मिथ्या में ही मनुष्यत्व है। इस मिथ्या भरी वस्तु को पाने की इच्छा में नियम के अनुसार आदमी कभी देवता भी हो सकता है। इस आदर्श में हमारी अर्थनीति, शिक्षानीति, शासन सब चलना चाहिए। परंतु अब उलटा हो रहा है। आदमी कैसे ज्यादा कमाएगा, इस लक्ष्य में शिक्षा, शासन, अर्थनीति चल रहे हैं। सांसारिक दृष्टि से देखें—मेरा यह मिठाई खाना अन्याय है। अपने संसार के सबका लोभ निखारने का भार मुझ पर है। मैं लोभ में पड़ उसे चरितार्थ करता हूं—तो यह अन्याय ही नहीं, व्यभिचारी भी होऊंगा। सरकार लोभ में पड़े, यह राजतंत्र हो या समाजवादी देश हो, या कम्युनिस्ट देश हो, वह सरकार व्यभिचारी...

परेश ने बहुत पढ़ा है। कई बातें जानते हैं। मगर सूखे विचार और विश्लेषण एक तरफ बढ़ते गए, साथ में लोभ दूसरी तरफ चलता रहा। विचार करते-करते सवाल उठा—हे परमात्मा! लोभ, निराशा या अक्षमता से जनमे वैराग्य में क्या रखा है?

इस बीच एक आदमी कुछ और 'दिलमोहन' लेकर जा चुका था। सिर्फ दो बचे हैं। समय और नहीं रहा। दर्शन या विश्लेषण की जगह भय में पांव आगे नहीं बढ़े। बाद में खाली थैला लेकर घर लौटने पर जो हालत होगी, वह याद आ गया।

ना, दरिद्र को यह अधिकार नहीं है। दरिद्र के लिए है आत्मा, परमात्मा, धर्म, त्याग, संयम। सरकार जब उपदेश देती है, ये सब हमारे लिए हैं। लोभ में पड़ हम कुछ करें तो पुलिस शासन उपदेश हमीं पर उंडेल देते हैं। ना, संयम ही ठीक है। संयम पर हमारी सरकार टिकी है। ऊपर-ऊपर असंयम हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। नीचे हमीं असंयमी बन जाएं...

एक व्यक्ति उन्हें धकियाकर अंदर चला गया। कहा, 'एक दिलमोहन!' बस

एक है। उन्हें कोई होश न रहा। सारा दर्शन, सारा चिंतन कहीं गायब? दुकान में जाकर कुर्सी पर बैठ गए। 'एक मुझे भी?'

उनका आदेश सुनने कोई नहीं आया। कुछ क्षण प्रतीक्षा की। फिर भी कोई नहीं आया। दुविधा में पड़ गए। यह असहनीय है।

किसी का लाल दुपट्टा उड़ गया है। आनंद की चीख सबको सूचना दे रही है—मेरा लाल दुपट्टा उड़ जाए! दुकानदार मशगूल हो सुन रहा है—परेश भी गीत सुनने लगे। सुनते-सुनते उनके विचार ढल गए—धन्य है बंबइया फिल्म। मदारी नाचते समय बंदर से कहे—बाबू को तू पेट दिखा। पैसे देंगे। वैसे यह नारी कूल्हे मटका पेट दिखा पैसे मांग रही है। सरकार की उधर निगाह नहीं...मनुष्यत्व कहीं जाए, परवाह नहीं। पैसे कमाओ, राष्ट्रीय आय बढ़ाओ। बस! इधर काम, लोभ आदि चरितार्थ करने के उपाय बढ़ रहे हैं। उधर वे त्याग करने के उपदेश उंड़ेल रहे हैं, शिक्षा में, भाषण में। आदमी मारा गया दुविधा में।

कुर्सी पर एक और बैठ गया। उनके मुंह से 'दिलमोहन' निकला कि परेश उत्तेजित हो चिल्ला उठे, "कब से एक दिलमोहन मांग रहा हूं। कोई नहीं सुनता!"

उनकी आवाज सुन दो-तीन आ गए। जल्दी से दिलमोहन अलमारी से निकाल उनके आगे रखा। परेश ने तुरत-फुरत खाया, पैसे चुकाकर बाहर आ गए। तरह-तरह की उल्टी-सीधी बातों, इच्छा-अनिच्छा के बीच अधीर होकर दिलमोहन खा लिया, मगर कोई स्वाद नहीं पाया। अब तक मानो वे अचेत थे।

बाहर आकर होश आया। अपने थैले की ओर देखा। अब बाजार की ओर क्या जाएंगे? बनारसी पान वाले की तरफ मुड़े। एक बीड़ा पान और एक सिगरेट लगाकर घर लौट पड़े। मगर पांव आगे पड़ते ही नहीं। और कोई उपाय नहीं। घड़ी में दस बज रहे हैं। स्त्री के भय से नौकरी का डर अधिक तीव्र हो उठा। तेजी से चल पड़े।

घर पर क्या कैफियत देंगे? कुछ समझ नहीं पाए। एक बार सोचा—घर नहीं चलें। सीधे स्टेशन चलें, हरिद्वार! संन्यासी बन जाएं! कुछ दूर स्टेशन की ओर चले। मगर मन नहीं माना। पौरुष पर चोट थी। किससे डरकर संन्यासी होंगे? क्यों?

परेश मुड़कर घर चले। कुछ दूर चले, पांवों की गति शिथिल हो गई। रुककर उपाय सोचने लगे।

हां! वाह! ये ठीक है। जो संदेह करे सो पाजी! मन ही मन डकार आ गई।

गली में जाकर परेश ने इधर-उधर देखा। फिर कमीज उतारी। उस पर पीछे कुछ कीचड़ मल दिया। कमीज पहन घर चले।

अंदर आते न आते आवाज लगाई, "मां...लो...बाप रे!" उस मां-बाप शब्द में हताशा और भय मिला था।

मां घबराकर ठाकुर पूजा छोड़ बाहर आ गई।

"क्यों रे परिया! यों क्यों चीख रहा है? क्या हुआ?"

"और क्या होगा? पंखा हिला जरा..."

"अरे, बेटे क्या हुआ?...बहू, पंखा देना! अरे गारा कैसे लगा बैठा?"

मां परेशान!

"बस! पंखा झल दे!"

एक-दो गहरी सांस लेकर, माथे पर पानी छींटकर गमछे से पोंछा। मां की ओर झुककर परेश ने कहा, "मैं बजार से लौट रहा था। पीछे से सांढ़ दौड़ता आया। थैले से साग झटक ले गया। थैला गिर गया और साग बिखर गया। उधर दो सांढ़, दो बछिया कहीं थी—दौड़ी आई...खाने लगी..." कह तो गए। मगर संदेह हो गया, गिनती ज्यादा हो गई है। तालमेल नहीं रहा...

मगर सुधारने का उपाय न था। वैसे ही बोलते गए, "उन्हें भगाने के लिए पत्थर उठाया—एक सांढ़ ने सींग दे मारा। मैं गिर पड़ा। ठीक तभी एक मोटर दनदनाती आ गई, चढ़ ही जाती, तेरे आशीर्वाद से बच गया..."

मां सुनकर घबरा गई। रो पड़ी। दौड़कर ठाकुरजी के पास से चरणामृत, फूल, बेल पत्ते लाकर बेटे के माथे से लगाए।

पत्नी सुनकर गंभीर हो गई। संदेह से पूछा, "सच? क्या कहा, दो सांढ़! दो गाय! दो बछिया...सब याद रह गया...बोलो तो..."

परेश चीख उठे, "देखो...देखो...मां! इसे जरा भी दया-माया नहीं!" मन ही मन कहा, "स्साली क्या अकल लगा रही है?" पत्नी पर कुछ गर्व भी हो आया। पकड़े जाने पर गुस्सा और तेज हो गया। गरजे, "चुप! बदमाश!" पत्नी मुंह झकझोर चल पड़ी।

मां, गाली बरसाने लगी बहू पर। परेश भी शामिल हो गए। कहा, "मां-बाप से बड़ा कोई नहीं। सब चूसना चाहते हैं। मेरी जान से पैसा बड़ा हो गया, उसके लिए। औरत की छोड़ो, यह हर तरफ से शोषण करती है।"

अब तो पत्नी को आग लग गई। आंखें तरेरकर कहा, "क्या है, जो चूसूंगी? हर तरफ तो सूखा है!"

परेश सम्हाल न सके। इस अपमान पर होश खो दिए। पत्नी को मारने रसोई में दौड़े। हाथ उठाया, पर सके नहीं। अक्षम क्रोध में भात की हांडी उठा लाए, आंगन में पटक दी। पत्नी पल्लू खींच खाट पर चली गई।

मां चीखने लगी, "क्या कहा री मंगती! बेटे को चूस नहीं खाती? नहीं खाती? मेरा लाल क्यों सूख रहा है? दूध का नाम भी नहीं बेटे के लिए। सब तेरे पीछे खरच कर देना है।"

परेश तमतमाकर कमीज पहन निकल गया। घड़ी में देखा—साढ़े दस! हांफते हुए दौड़े कचहरी! कलह याद नहीं। कड़े हाकिम की बात सोच रहे हैं। इतनी देर!

क्या कारण बताएंगे...!

मानो लोभ का तूफान गुजर गया। वहां जाकर देखा कोई खास बात नहीं। कुर्सी पर बैठ पंखा खोल दिया। पसीना पोंछा। सारी घटनाओं पर आंख फिराई, हंसी आ गई। मन में कहा—मैं स्साला बुरा नहीं, भला हूं! लोभ, हिंसा, ये क्या भले गुण हैं? कुल मिलाकर मैं भला हूं या नहीं? ससुरा मैं ऐसा हुआ क्यों। एं! छोड़ें, गोविन्द की गति न्यारी! झूला झूलते चल रहे हैं।

अचानक मन शांत हो गया। पसीना पोंछ काम में डूब गए। बड़े बाबू से हंसकर कहा, "बड़े बाबू, आज से जो काम चाहें दें, दूसरों का भी दें, चटपट कर दूंगा। देखना..."

चश्मे से झांककर बड़े बाबू ने देखा, "ऐसा है, अपना काम ठीक करें! पराया काम करके बहादुरी की चेष्टा न करें। और ऐसा कर मैं दूसरों का बुरा क्यों करूं? अपना काम ठीक करो। दूसरों का काम देने पर तुम्हीं शोर करोगे। समझे..."

परेश का दिल फिर बैठने लगा।

मगर वे हंसने लगे, "समझा-समझा!"

नारी और कवि

शंख और हुलूध्वनि में घर मुखरित हो उठा। घोर वर्षा। मगर मंद मलय बहने लगा। पिक कुहू तान छेड़ उठी। आकाश में पूर्णचंद्र उग आए। ऐसा ऋतु-विपर्यय क्यों हो गया? ओहो! श्रीचक्रधर महापात्र के मध्यमपुत्र श्री मुरलीमोहन के साथ अठाठीक निवासी जीवन बल्लभ दास की ज्येष्ठा कन्या आयुष्मती सुशीला कुमारी का शुभ परिणय निश्चित हो गया है। कोई विश्वास न करे, इस प्रमाण के लिए कुहनी तक एक नारी और वैसे ही पुरुष का चित्र हाथ जोड़कर पुष्पमाला में वेष्टित अवस्था में प्रकाशित हुआ है। पत्र द्वारा अनिमंत्रित रह गए अनेक अबांधव चक्रधर के मुहम्मदिया बाजार वाले मकान पर उपस्थित थे। मुरली की भौजी ने इस ऋतु-विपर्यय को गुलाबी कागज पर लाल अक्षरों में छपवाकर प्रचार करने के साथ-साथ प्रार्थना की है—हे दयामय! विभो! दो हृदयों का अपूर्व मिलन हुआ। दोनों को ऐसा मिला दें कि जन्म जनमांतर तक...इत्यादि।

साथियों को छोड़कर आने में रात बहुत हो गई। जानबूझकर मुरली देर से लौटा। सोचा था—सुशीला इंतजार कर, मान में भरी पलंग के कोने में बैठी होगी। सुंदर आंखों में छलके आंसू और भी सोहने दिखेंगे।

मगर देखा—वह गहरी नींद में सोई है। मुंह पर आंचल सांसों से उठता-गिरता है। अजीब आवाज आ रही है। सारी कल्पना माटी में मिल गई। क्षोभ और मान में देह कांप गई। फिर सोचा—दो दिन के उपवास में वह थक गई और वहीं सो गई...यह खयाल कुछ सांत्वना दे गया। सुशीला को अपने आने की खबर देने हेतु कुछ आवाज की। पलंग पर बैठ गया।

फिर भी वैसे ही रही। मुरली को क्रोध आ गया। प्रतिशोध लेने के लिए ये सोने का बहाना कर रही है। चैन की सांस ले मुरली मुस्कराकर सोने का अभिनय करने लगे। सचेत हो सुशीला के संकेतमय परस की प्रतीक्षा करने लगे।

सुशीला वैसे ही रही। सिर उठाकर तिरछे देखा। इसे तो आने की खबर ही नहीं। अब की सहम उठे—तो क्या इसे मैं पसंद नहीं आया? यह विचार आते ही माथे पर पसीना आ गया...ठीक है...वह बदला भी ले लेंगे...

मुरली गहरी नींद का बहाना कर कहने लगा...रानी...रानी आओ...आ...जा...।

सुशीला वैसे ही रही।

...ना...मैं विवाहित हूं, तुम्हीं मेरा सब कुछ...

सुशीला ने करवट बदली। तकिया कसकर आराम से सो गई। सब बेकार...रात भर मुरली सो न पाया। पूरी रात दुश्चिंता लगी रही।

इसके बाद तीन वर्ष कट गए। मुरली समझ नहीं पाया कि सुशीला उसे चाहती है या नहीं। बीच-बीच में संदेह होता, इसमें कोई औरतों वाले गुण नहीं। सुशीला के मन में ईर्ष्या पैदा करने के लिए कहने लगे—रानी के साथ पहले प्रेम था...

वह बोली, "सब झूठ है। जानती हूं।"

"क्यों, झूठ क्यों?"

"जानती हूं, प्रेम में पड़े आदमी की बात न्यारी होती है।"

"मुझे क्या कोई औरत प्रेम नहीं कर सकती? ठीक है, समझ गया, तुम्हारे मन की बात।"

"ऐसा नहीं कहती मैं। तुम झूठे ही रानी-रानी बड़बड़ाए थे नींद में।"

मुरली क्रोध में भर गया। शायद कुछ उल्टा-सीधा न कर बैठे। वह वहां से हट गया। कितनी तरह से आकृष्ट करना चाहता, पर कुछ फरक न पड़ा। गंभीर हो भर्ता रूप लिए रहा। चुप रहकर तापस रूप किए रहा। अंत में एक दिन साहित्य लिखना शुरू कर दिया। उनकी कविता छप गई। मुरली ने पत्रिका ऐसी जगह रखी कि सुशीला की नजर पड़े। कचहरी से लौटकर देखा—कोई फर्क नहीं। सहज भाव से नाश्ता बनाकर तैयार किया। दो दिन बीत गए। पर उसने कविता का नाम तक नहीं लिया।

एक दिन कह दिया, "मेरी कविता छपी है। देखी? प्रशंसा भी छपी है। देखोगी?"

"देखें! वाह! बताया नहीं! आज टूप की बहू को दिखाती हूं। टूप के बाबा ने कुछ लिखा है, क्या गर्व में दिखाती है!"

"बताना क्या है? तुम्हारे सामने बैठ लिखता हूं। तुम खूब सोती हो।"

"मुझे क्या पता। सोचती कि आफिस का काम करते हो।"

"रात एक बजे तक आफिस का काम!"

"पिताजी तो करते हैं! तुम भी करते होगे, यही सोचा।"

"मैं क्या लिखता हूं, कभी जानना चाहा?"

"बताया न, मैं इसे आफिस का काम समझती। मैं क्या जानती कि तुममें यह गुण भी है!"

"और क्या जानती?"

"गुस्सा न करो, दोपहर में टूप की बहू को दिखाना है।"

"टूप की बहू के बजाय तुम पढ़ती, तो मुझे ज्यादा खुशी होती।"

"पढ़ूंगी। पढ़ूंगी।"

अगले दिन मुरली जल्दी लौटा। देखा सुशीला मां के पांव दबा रही है। मां पर गुस्सा आ गया। ये दासी चाहती हैं, और कुछ नहीं।

घर में चीजें फेंक मुरली ने कहा, "मेरी कलम? एक खयाल आया है, कलम ही कोई ले गया। यहां लिखना भी मुश्किल है।

भौजी ने आकर कहा, "क्यों शोर मचाते हो? वो आ रही है। चिल्लाओ नहीं। मां अभी जरा-सा आराम कर रही हैं।"

"मैं कुछ नहीं जानता। बुलाओ, कलम दे जाए।" ऊंचे स्वर में मुरली ने कह दिया।

"बड़े बेलज्ज हो।" सुशीला ने आकर कहा।

"वो छोड़ो। पढ़ा?"

"क्या?"

"मतलब?"

"ओ, आपका लिखा? टूप की वहू नहीं आई। मुझे याद नहीं रहा। काम से फुरसत नहीं मिली। कब पढ़ती?"

"फुरसत नहीं!"

"गुस्सा थूको। बच्चे को सुलाती रही। यह ऐसा नटखट है, तुम्हारी तरह सोएगा नहीं। जब तक मैं न सहलाऊं। आज रात में खुद सुनाना! ठीक है।"

"ठीक है, रात में जल्दी निपटाकर आना।"

घर का काम करते-करते उसे रात के बारह बज गए।

पत्रिका लिए मुरली जाग रहे हैं।

"अब! खैर, कृपा कर बैठो।"

"जरा कुनू को सुला दूं।...वरना वो सुनने न देगी।"

"वो भी सुने, कवि होगा।"

कुनू उठ बैठा, "मां, मैं भी कोबी खाऊंगा।"

कुनू को चूमकर बोली, "अरे बुद्धू, ये वो कोबी नहीं। ये खाने की चीज नहीं, अखाद्य कवि हैं।"

"ना, खाऊंगा।" कुनू जिद कर रहा है।

"ठीक है, खा लेना। पहले पापा जो पढ़ते हैं, सुन!... अब तुम इसे पढ़ो।"

"करीब बैठो।" मुरली ने नेह में सुशीला को भींचकर खींचा। कुनू ने मां का आंचल खींचकर कहा—मां तुम इधर ही सोओ।"

"अच्छा।" कुनू को चूमकर गर्व में कहा।

"ठीक है, वहां बैठकर सुनो, मुंह इधर करो।"

रूप नहीं, रस नहीं, ना कोई सुवास!

पंक्ति पढ़कर रुककर मुरली ने उधर देखा। सुशीला का माथा बिछौने से लगा है। कुनू आंखें मटकाता देख रहा है। मुरली ने धकियाकर जगाने की चेष्टा की। इस बीच सुशीला पथरा चुकी है।

गुस्से में मुरली पत्रिका फेंक सो गया। अपने खयाल आंखों में उतर रहे हैं। सुशीला चैन से नींद में। कुनू सो चुका है। सुशीला का एक हाथ कुनू को आवोर रहा है।

रात के दो बज रहे होंगे। अचानक कुनू जाग गया। सुशीला की नींद टूट गई। मुरली नींद का अभिनय किए आंख मूंदे रहा।

कुनू ने कहा, "मां, मैं पढ़ूं तू सुन..."

सुशीला ने खुशी में भरकर कहा, "सच, तू पढ़ेगा, कवि बनेगा..."

गंभीर हो पढ़ने लगा...

करम...कारम...मखन...लपट...बिसूर है...दोगी...

वह मुग्ध देखती रही। कुनू की अद्‌भुत कविता सुन खुशी में भर चूमने लगी।

सुशीला ने कहा, "है...है, सब है...सुबह दूंगी..."

कुछ देर तक वह पढ़ता रहा। बिना रुके। सुशीला भी आग्रह में भरी सुनती रही।

सुशीला में वो कविता सुनने का भी आग्रह नहीं लगता।

मुरली ने गहरी सांस छोड़ी। मुरली समझ गए कि नारी प्रेमिका नहीं, जननी होती है, मैं कवि नहीं—कुनू कवि है।

मानव और दानव

गहरी रात के निविड़ अंधेरे को चीरकर एक दानवी अट्टहास! हा...हा...हो...हो... लहरा-लहराकर वह हंसी बार-बार पर्वत वनराई की शांति, नीरवता को कंपित करने लगी।

मैं और प्रवीर मंच से उतर टार्च लगा बंदूक थामे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नरभक्षी बाघ की तलाश में। उस अट्टहास ने धक्का दे हमें रोक दिया। भय के कारण दोनों करीब आ गए। रोशनी रखने का साहस नहीं।

अट्टहास पर्वत गुफाओं में गूंजकर लीन हो गया। हर कोलाहल का आदि अंत उसी महानीरवता में है। चारों ओर फिर स्तब्धता, अकंपन। भयावह थी वह निस्तब्धता।

अचानक एक करुण चीख। हृदयविदारक चीख। हम दोनों भारत विख्यात शिकारी हैं। साल में आठ माह जंगल में बीतता है। प्रायः हर जंगल, हर जानवर से हम गहरे परिचित हैं। पर ऐसी चीख कभी न सुनी थी। पुत्र वियोग में मां की रुलाई में ज्वालामुखी की गरज मिलने की तरह।

आर्तचीख के बाद वही नीरवता। डरे हिरणों का झुंड हमारे निकट से दौड़ गया। बाद में पीछे-पीछे हाथियों का झुंड, उनके पीछे छह बाघ भी भागते दौड़ते गए। हम पास के पेड़ पर चढ़ गए। अज्ञात भय में हम सिहर उठे। मैं रोशनी करने जा रहा था। प्रवीर ने रोककर चुप बैठने कहा। कड़ी ठंड में पसीना झलका।

कुछ क्षण ऐसे ही बैठे रहे। अचानक चौंककर देखा—झुरमुट में दो आग के लुआठे! हरेक छोटा फुटबाल लग रहा है। दो बार इधर-उधर हुआ, फिर वे हमारी ओर मुंह कर स्थिर हो गए।

आग के गोले देखकर हमारे पसीने छूटने लगे। जिस डाल पर थे, वह हालांकि धरती से आठ गज ऊंची थी। मगर अधिक मोटी न थी, अतः हमारी स्थिति डांवांडोल थी। एक ओर डाल पकड़कर बैठे थे। मगर आग का गोला देख थर्राने लगे थे। हर पल गिरने का डर। डर के मारे अकल गुड्डम हो गई।

तभी आग का गोला बुझकर फिर जल उठा। अब की और तेज था। हम तो पागल हो गए। प्रवीर सम्हाल न सका। अंधाधुंध गोली दाग दी। आग के गोले फिर बुझ गए। जिस झुरमुट से वे दिख रहे थे, वहां खसखसाहट सुनाई दी। फिर मानो कोई भारी कदम डालकर चला गया।

कुछ समय बाद चैन आया। रुमाल निकाल हाथ-मुंह पोंछे, गोली लोड की। प्रवीर ने कान में कहा, "चल, इसी बीच भाग चलें। गांव तो मील भर है...।"

प्रवीर की बात पूरी हुई कि फिर वही अट्टहास सुनाई पड़ा। अब यह पास ही झुरमुट में था। कितना तेज और वीभत्स था वह स्वर! तरंग हृदय दहला देती। डाल को कसकर थामने के दौरान दोनों की बंदूक छूटकर गिर पड़ी।

उफ! कैसी घड़ी है! हममें जरा भी ताकत नहीं रही। जो देख रहे, सुन रहे या कर रहे थे, सिर्फ प्रवृत्तिवश। देखे-सुने पर विचार करने का दम रह नहीं गया। कैसी भयावह हालत थी!

भगवान कहीं हो (जो मानते हैं उनकी बात सच हो) इस हिलने से लेकर हर बात के नियंता वे हों, उनके बारे में कुछ खेदोक्ति कह देता हूं। जो सिर्फ घटना सुनने बैठे हैं, वे इन बातों को बाद दे दें। मगर घटना से कुछ निर्णय पाना चाहें, मेरी बात पर विचार कर देखें। बुद्ध, गांधी, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य, परमहंस, विवेकानंद, रवींद्रनाथ आदि महत्वपूर्ण विप्लवी (वही विप्लवी हैं—राजनीतिक, युद्ध विशारद या उद्योगपति नहीं—क्योंकि वे मानव मन को नई राह पर ढाल सके हैं।) कहलाते हैं—भगवान की उपलब्धि जीवन में चरम उपलब्धि है—क्योंकि वे ही सबसे उत्कृष्ट हैं। पर मैं कहता हूं—बाद की घटना से सच लगता है। भगवान को स्थान-काल-पात्र का ज्ञान नहीं रहता। कुरुक्षेत्र जैसे महासमर के समय लंबा कठिन दर्शन दे सके, उनके लिए यह क्या विचित्र है?

हम जब ऐसी भयावह स्थिति में थे, एक विपद भगवान के क्रूर परिहास-सी दिखी। हम जिस डाल को जकड़े थे, उसके कुछ आगे दो जुगनू-से चमक रहे थे। हमारी ओर आगे बढ़ रहे थे। वे जुगनू कतई नहीं हो सकते। एक की दूसरे से दूरी सदा बराबर। जरूर कोई जीव थे। उस हालत में चींटी का चढ़ना भी विपद लगता। यह जीव जिसकी आंखें चमक रही थीं!

प्रवीर भय में चीखा, "जानता हूं, यह टारांटूला, टारांटूला है। हे भगवान! प्रवीर जूलॉजी में डाक्टरेट है। खुद डरा, मुझे भी डरा दिया। टारांटूला क्या है—पूछा। यह सवाल ज्ञान के लिए न था। जब धन-मान-ज्ञान में बड़ा कोई व्यक्ति विपद में पड़ता है, तो मौका पाते ही पहले दिखाने की चेष्टा करता है।

प्रवीर ने समझाया, "एक जहरीला मकड़ा है। काट ले तो जहर से आदमी नाच-नाचकर मरता है।"

बंदूक गिर चुकी थी। कंधे पर सिर्फ टार्च थी। टारांटूला तो धीरे-धीरे सरकता आ रहा था। जलती निगाह हम पर थी। कंधे से टार्च झूल रही थी। टारांटूला धीरे-धीरे आगे आ रहा था! जलती आंखें हमारी ओर स्थिर थीं। तो क्या हमें नाच-नाचकर मरना होगा! यह भगवान का क्रूर उपहास नहीं? मंगलमय, आर्तत्राण कैसे कहूं उन्हें?

जब गज कुंभीर के चक्र में पड़ा तो उसने स्तुति की थी। तब आतंकनाशन

ने सुदर्शन धारण किया, उसे कहा—

चक्र तू बेग से जाना
कुंभीर को तू बचा देना
टूटेगा खंड-खंड होकर
गज के तोड़ना बंधन

ऐसा ही हुआ सो जगन्नाथ दास ने लिखा। मगर 'आतंकनाशन', यह तो आतंकवर्धन काम है। कह सकते हैं हम खेल के बहाने जंतु वध करने गए थे! उनकी मृत्यु वेदना में उल्लास मनाने। अतः यही प्राप्य है। यह शिक्षा पीछे देते तो बुद्धिमानी होती, शिक्षा भी फलप्रद होती। कुछ कहते हैं पूर्व जन्म के पाप से इस जन्म में कुष्ठ आदि हो जाता है। कुछ भी कहो, मन मानेगा?

टारांटूला आगे आ रहा है। चरम विषाद में आदमी लाचार हो हंसता है। प्रवीर ने वही हंसी हंस दी। आदमी तभी दार्शनिक हो जाता है। मैं सोच रहा था ऐसे कुत्सित, वीभत्स जीव, ऐसा विषैला जंतु क्यों बनाया? सच, भगवान ने इन्हें बनाया? जो ऐसी वीभत्स कल्पना कर सकता है, वह वैसा क्यों न होगा? किसी ने मन में उत्तर दिया—आदमी क्या कम वीभत्स है? कम जहरीला है? कम घिनौना है? अर्थ, यश, मान, पद के लिए अकारण कितनी क्रूर हत्या नहीं कर डालता? कितने जहरीले हथियार उसने बना डाले! कितनी शठता उद्भावन कर ली है, औरों को कितना नचाता है! इसका जवाब दो! कड़ी-कड़ी बातें कह सारे सुख लूट औरों को स्वार्थ त्यागी बनाने की सीख लेता है। वरना मार। कोई उत्तर नहीं। कुछ अनमना हो गया। अचानक आंख टारांटूला पर चली गई। वह एकदम निकट था!

दसमी का चांद उग चुका था। हर पेड़ के पात-पात पर मोती झलक रहे। अचानक कोयल जागकर गा उठी—कुहू...कुहू...कहो...! एक और पक्षी—पिउ कहां? पिउ कहां पुकारकर उड़ गया। उस अनदेखे अनपहुंचे के अन्वेषण में दूर से क्षीण पर स्पप्ट स्वर आ रहा है—

कोटि सूर्य किरीटम् ललाटे
कस्तूरी तिलकम्, पद्मनाभम् सुंदरम्

एक पक्षी 'हूं...हूं...' का गुंजरण कर उठा।

टारांटूला की धीर, भीतिप्रद गति थम गई। हम भी मंत्रमुग्ध हो अपलक देखते रहे। आंखें गीली हो रहीं।

प्रवीर की अंगुली के स्पर्श से चौंक गया। प्रवीर ने इशारे में उस झुरमुट की ओर दिखाया। अब की वे दोनों गोले उड़ने लगे, धीरे-धीरे हमारी ओर बढ़ रहे थे।

आग के गोले धरती से सात-आठ फुट ऊंचे थे, तब जान सके कि किसी अजीब जंतु की आंखें हैं। वे आंखें हमारे सामने थीं। साल के खंभे की तरह हाथ। कभी भी पकड़कर हमें चींटी-सा मसल सकता है।

टारांटूला आंख टिकाए और आगे सरक आया। ऊपर नीचे, बाएं-दाएं दो चार बार हम पर वे आंखें घूम आईं। हूं...हूं करता पक्षी फिर चीखा—हूं...हूं...हूं...हूं...! मानो विश्वासघातक उल्लू उसे हमें मारने के लिए उत्साह दे रहा हो। मन में तय किया, यदि बच गया—मेरे जीवन का व्रत होगा उल्लू विनाश। मन की गति मन ही जाने।

अग्निकदुकाक्ष जीव डग भर आगे आ गया। हर कदम पर हमारा पेड़ कांपता। वे आंखें हमसे कुछ ही इंच दूर हैं। सांस हम पर गिर रही हैं। हमारी टोपी उड़ा दी। सिर के बाल फरफराने लगे। अब टारांटूला दो-चार इंच भर है। वह दांत अपने पैरों पर घिस रहा है! शायद हमें काटने से पहले दांत पैने कर रहा है। एक अजीब चर्र-चर्र शब्द हो रहा है।

तभी पास में मानवी स्वर में सुना, "सुकंटक, आओ! आओ, सखा, यह क्या!!"

ओ! अजीब स्थिति है! भय में आश्चर्य मिल गया। कौन है! मानव या देव? देवता है तो हमें क्या करना चाहिए? कैसे अभिवादन करें! मंत्री, सेक्रेटरी या कलक्टर के आगे कैसे झुककर खड़े होना चाहिए। हम उसका परिणाम भी जानते थे। पर देवता से वैसे ही व्यवहार करें?

अब की आवाज निकट थी।

आओ बंधु, सुकंटक! मेरे संग खेलना!

ये तुम्हारा खेल नहीं समझ पाएंगे।

फिर वह गगनभेदी अट्टहास! हो...हो...हो...! फड़फड़ाकर उतरा एक उल्लू, टारांटूला को झपट ले गया। उसके प्रति कृतज्ञता में मन भर गया।

उस अट्टहास में हम नीचे गिर गए। हमारा सारा ज्ञान झर गया। होश डूबते समय देखा, एक आदमी सुकंटक नामक उस वीभत्स जीव का हाथ थामे जा रहा है। गा रहा है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

उसके बाद क्या हुआ हम कुछ नहीं जानते।

अगले दिन सुबह।

जागे तो देखा हम एक झोंपड़ी में लेटे हैं। आंख मलकर पिछली रात की बातें याद करने लगे। कुछ स्पष्ट याद नहीं आ रहा। दूर से तैरता आता-सा लगा—यदा यदाहि...। प्रवीर ने हाथ जोड़ नमस्कार किया। अपने प्राणितत्व से पता नहीं क्या नूतन तत्व पा गया, निरीश्वर और भौतिकवादी प्रवीर को अज्ञात के प्रति नमस्कार करते देख मैं आश्चर्य में रह गया।

बाहर आकर देखा—चारों ओर घना वन। चारों ओर युवकों के दल लाठी-बल्लम

लिए बिखरे हैं। ढोल महुवरि बजा रहे हैं। एक किसी का स्वर दूर से सुनाई दे रहा था, "भाइयो, लौट आओ...लौट आओ।"

उधर देखा—कोई कमनीय युवक। चेहरे पर स्निग्ध हास। हाथ में कमंडल, देह पर कौपीन के सिवा कुछ नहीं।

युवक चमक गए। मन में दुविधा। क्रमशः एक-एक कर वे युवक की ओर लौटे। पूछा—क्यों? आवाज क्यों दी? कौन हो?

"कहां जा रहे हो भाइयो।" युवक ने पूछा।

"एक दानव को मारने!"

"मन के दानव को पहले मारो। फिर बाहर के दानव को मारना।" युवक ने स्निग्ध मगर दृढ़ स्वर में कहा।

हम ये सब नहीं समझते। वो फालतू बातें हैं। उसे आज मारेंगे...मारेंगे, उसे बोटी-बोटी काटकर खाएंगे, खून पी जाएंगे।

बड़े शिकारी हो! युवक हथियार ऊंचे कर किलकिलाकर नाच उठे।

"उसने किसी का नुकसान नहीं किया..." वह युवक बोला।

"वाह, हर रात देखते हैं, उसे मारने की जगह गांव का एक और बेटा बना लो।" हंसकर कह उठे वे।

"उस हिंस्र असुर को?" आश्चर्य में सबने पूछा।

"जरूर..." दृढ़ता में युवकों ने कहा।

तब तक हम दोनों औरों में शामिल हो गए थे। मैंने पूछा, "वह हिंस्र पशु। आपकी गीता कहती है कि शत्रु विजय प्राप्त करो।"

युवक की आंखें छलछला आईं। कहा, "बंधु यह भ्रांत धारणा क्यों? अर्जुन की हिंसा, द्वेष, मान, गर्व, अहम्, दूर कर पूर्व ज्ञानोदय कराया गया। उन भगवान के चरणों में कोटि प्रणाम! कहा—सखा, अब युद्ध करो या न करो, तुम्हारी इच्छा। सबसे पहले तो आप मन के दानवों का दमन करो। बाद में बाहर के दानव की बात करना। और असुर कौन है! भाइयो, विश्वस्य स्रष्टारम् अनेक रूपम्। नमस्कार! चलो, भाइयो! हम उसे इस गांव का बेटा बना लें। हमारी तरह वह भी यह एक है।"

मैंने मन ही मन कहा—यह पागलपन है।

जनता में एक ने उत्साह में कहा, "क्या यह संभव है?"

फिर युवक की आंखें छलछला आईं। कहा, "भगवान कृष्ण मदन दहन नहीं हैं, मदनमोहन हैं। मोहनचंद गांधी यह बात प्रमाणित कर गए हैं। अंदर कूटनीति कर छलावा करने से यह असंभव है। हे अमृत पुत्रो! धन, मान, क्षमता, प्रतिपत्ति से तुम्हारी मानवता का विकास नहीं होगा। दानवता बढ़ेगी। हे अमृतपुत्रो! तुम बोलो—हम अमृत पुत्र हैं!

मानो, कोई हमारे स्वर में बैठकर कहलवा रहा है, "हम अमृत पुत्र हैं! हम अमृत पुत्र हैं!" यह स्वर निकलते ही रोम-रोम में सिहरन, आनंदमय साहस का संचार हो गया।

हम बार-बार यह बात कह आनंद से झूम उठे।

युवक वैसे ही ध्यानमग्न रहा।

और अधरों पर स्मितहास वहां स्थिर प्रभा की तरह विराजमान रहा।

निमंत्रण

पढ़ो...! रवीन्द्र ने खत रेणु के हाथ में दे दिया। रेणु खत पढ़कर सिर पर हाथ रख कुर्सी पर बैठ गई। तुरंत चौंक उठी। बड़ी दुर्घटना से बच गई। घर पर एक ही कुर्सी है। वह भी टूटी। कई दिन वह घायल हो चुकी है। किसी को आराम नहीं दे पाती। जलावन कर लें, वही बेहतर। कम से कम सुरक्षा तो कायम होगी! पर घर में कुर्सी होने का जो गर्व और संतोष रेणु को मिलता है, वह किसी चौकीदार के गर्व-संतोष से कम नहीं। इस जरा-सी मानसिक कमजोरी के कारण रेणु मुश्किल से जोड़-जाड़कर कुर्सी का कुर्सीत्व रखे हुए है। बैठते समय बड़ी सावधानी से शरीर का भार रखना पड़ता है। अचानक विचारों में वह कुर्सी के बारे में सब भूल गई।

खत छोटी बहन मल्लिका का है। बहन ने विवाह किया है, धनी घर में। पति धनंजय पिता के इकलौते बेटे हैं और, ऊंचे पद पर हैं। विवाह की सालगिरह पर मल्लिका ने रेणु को निमंत्रण भेजा है। सिर्फ निमंत्रण ही नहीं, आने का अनुनय भी किया है। इससे हर बार की तरह कोई विश्वसनीय कारण बता टाल नहीं पाए, अब की बार चिंता की बात है—धनंजय खुद लेने आ रहे हैं। रवि और रेणु ने तेलंगा बाजार के छोर पर गली में, किराये का छोटा-सा मकान लिया है। छोटा घर, गली संकरी, गंदी जगह—किसी से मकान मालिक का मतलब नहीं है। धनंजय बाबू चौधरी बाजार में अपनी बड़ी अट्टालिका में रहते हैं।

कुर्सी प्रत्याख्यान की बात रेणु सह नहीं सकी। गुस्से में धक्का देने जा रही थी। रवि ने घबराकर गोद में खींच लिया। कहा, "अभी वे आ जाएंगे। बैठने को क्या दोगी? रेणु सिर पर हाथ रख नीचे बैठ गई। चैन से बैठना भी घड़ी भर संभव नहीं है यहां। हे भगवान!" रवि की ओर देखकर कहा, "अब सोचते क्या हो? घर छोड़ जाने के अलावा कोई उपाय नहीं। उस बार अजय के घर जाने में जो खर्च हुआ, जो अपमान मिला, पता है? क्या करें बोलो, अब और समय नहीं है।"

रवि ने हंसकर कहा, "मैं कहूं—क्यों? इतनी लाज क्यों है? वे धनी हैं, होने दो। अपनी हालत पर घृणा क्यों? ...तुम्हारी कमजोरी खुद को जलाती है। किसी का कुछ नहीं बिगाड़ती। धनी तो शोषक होते हैं।"

तेज स्वर में बोली, "ये अपने साम्यवादी भाषण बस करो।"

म्लान होकर रवि ने कहा, "रानी समझो! पूंजीवादी किस तरह दुनिया में गरीबी बढ़ा रहे हैं, गरीबों में लोभ-मोह बढ़ाकर उनकी आत्मा को मार रहे हैं।" रेणु का हाथ पकड़ कहा, "क्षुद्र हृदय दौर्बल्यम्!"

विद्रूप हंसी के साथ रेणु बोली, "मेरा हाथ थामकर ले चल मुझे सखा मेरे, मैं वो पथ ना जानूं...पर साड़ी!"

फिर माथे पर हाथ रखकर बैठ गई।

"वो तुम्हारी साफ साड़ी है न, जिसे पहनने पर तुम..."

"अप्सरा दिखती हो! पर ऐसी तो उसकी नौकरानी पहनती है!"

"धनी के यहां वे और उसके नौकर कैसे कपड़े पहनें, इसलिए अपनी साड़ी पर पैसा खर्च करूं?"

रेणु सम्हाल न पाई। आंसू झर आए। रवि चूमने ही जा रहा था कि रेणु ने पीछे धकेल दिया, विलाप करने लगी, "क्यों मेरे बाप ने गले में पत्थर बांध दिया! क्या सुख पाती हूं...केवल दर्शन सुनती रहो..."

रवि ने कई बार सुना है। साठ रुपए का क्लर्क है। आमदनी चार अंकों में हो तब जाकर रेणु के मन मुताबिक खर्च हो सके। ट्यूशन और अन्य कई उपाय कर भी तीन अंक से आगे नहीं बढ़ पाया। सारी आय रेणु के मन लायक साड़ी के लिए कम पड़ती है। चोट लगी, मगर हंसकर कहा, "नारी की यौन प्रवृत्ति उसकी सारी देह और मन में फैली होती है। मामूली भेंट, तुम्हारी आशा-आकांक्षा मैं पूरी नहीं कर पाता। पराजय स्वीकार करता हूं। समझता हूं यों हताशा में अधिक दिन रहने पर तुम शायद पागल हो जाओगी। कोई कुछ कहे, असल बात तो मैं समझता हूं। पर उपाय क्या है?"

"फिर शादी क्यों की?" रेणु ने तीव्र स्वर में कहा।

"तेरी मेरी कुंडली में राज योग था। तुम्हारे पिता की जिद थी—यहीं विवाह करें—मैंने घोर आपत्ति की, फिर भी।"

"आपत्ति क्यों?"

"तुम्हारी आकांक्षा में मेरी आकांक्षा का मेल होगा—इसमें मुझे संदेह था।"

"संदेह था तो दया कर शादी न करते।"

"अचानक तुम्हें देख लिया। पहले दर्शन में ही...बस! मन की मुग्ध हालत में अपनी क्षमता को कई गुने कर देखा। हालांकि मेरी क्षमता काफी बढ़ गई। अब मैं लेखक हूं। सपने में भी नहीं सोचा था कि...खैर वो बात छोड़ो। वे आ जाएंगे। बात मानो। अपना परिचय व सौंदर्य साड़ी में न रखो। मोर पंख वाले कौवे की बात पता है?"

"ना, वो साड़ी नहीं पहन सकती। वो पहन भी लूं। हाथ, कान और नाक में क्या लगाऊं?" हताश हो रेणु ने कहा।

रवि सिर पर हाथ रख बैठने जा रहा था, कि वह चौंककर उठ गया। यह मेरी अकल से बाहर है। शाम उतर ही आई है। धनंजय कभी भी आ सकता है। लाचारी में रेणु को देखा। उसके अधर पर हंसी आ गई। रवि के माथे पर हाथ फिरा कहने लगी, "मेरा कहा मान लो। मैं जाकर उनसे साड़ी व गहने मांग लाती हूं। इसमें आपत्ति क्यों?"

रवि ने खीझ में कहा, "मोर पंख लगाकर कौवा..."

"सब ऐसे ही करते हैं।" रेणु ने कह दिया।

रवि ने चुप रहकर देखा। उत्साह पाकर बोली, "यह भी तुम्हारा गर्व और दंभ है कि तुम जग में किसी की मदद न लोगे।"

"जो मरजी करो। अब की निमंत्रण पर न जाना अच्छा नहीं लगता।"

सामने घड़ी ने टन-टन छह बजाए। रेणु घबराकर दुर्लभ के घर चली गई। कुछ समय बाद कीमती बनारसी साड़ी और गहने ले आई। रवि वैसे ही सिर नीचा किए बैठा था। रेणु नृत्य के छंद में आकर रवि को धकियाकर कहने लगी, "क्यों इतना सोचते हो? देखो, यह साड़ी कैसी फबती है?" उसने प्रशंसा की आशा में अपने उन्नत वक्ष झुला दिए। रवि खाली निगाह देखता रहा। कहा, "खूब! वाह!"

दूर से कार की आवाज आई। हड़बड़ाकर रेणु ने साड़ी एक ट्रंक में तथा गहने बाक्स में रख दिए।

रवि ने पूछा, "कुनू जाग गई, उसका क्या करोगी?"

"उसे दुर्लभ के यहां छोड़ जाएंगे" रेणु सुलाने के लिए गई। कुनू साल भर की है। फिर सो गई।

धनंजय की आवाज आई, "कटक में ऐसी जगह भी है? ओह...इधर गंदानाला, ये कैसे रहते हैं?"

"आहिस्ता, दीदी सुनेगी!" मल्लिका ने कहा।

"रवि बाबू!"

"दीदी!"

रेणु लालटेन लेकर आ गई।

मल्लिका ने अधीर हो कहा, "दीदी! तेरा काम खत्म नहीं हुआ? जल्दी कर। कई काम बाकी हैं।" सब अंदर आए। मल्लिका कीमती साड़ी पहने है। समूची देह पर महंगे गहने हैं। पांव में हाई हील। धनंजय कीमती पंजाबी एवं धोती में हैं। हाथ में पाइप है। रेणु ने म्लान हो इधर देखा। धनंजय कुर्सी पर जा बैठे। रेणु जाकर पीछे खड़ी हो गई।

"दीदी! जल्दी..."

समय नहीं है। कलकत्ते से संदेश नहीं आया। माणिक पाटना से दही आना है। कलक्टर व चीफ सेक्रेटरी की मिसेज को लाना है। मल्लिका घसीटकर कपड़े

पहनाने ले गई। रेणु घबराकर रवि को देख रही थी। हंसकर रवि कुर्सी पकड़ रह गया।

रेणु जल्दी साड़ी बदलकर गहने पहन आई।

"दीदी, ये तो खूब जमते हैं! कब कर लिए?"

"याद नहीं। ये ले आए।"

"मानना होगा। इनकी पसंद खूब है! क्यों बाबाजी! व्याह करने से मना कर रहे थे? यह क्या?"

रवि भौंचका देखता रहा। कहा, "तुमलोगों का रूप मुनियों को भी गिरा दे! मैं तो मामूली..."

"समझी अब!"

"मन ही मन!"

"जाओ, धोती पहनो!"

रवि को हटाकर रेणु तुरंत कुर्सी के पीछे आ गई। मेल क्या खाता पहले? कपड़े धोबी ने दिए नहीं। मोटा पंजाबी और पुरानी धोती ही तो ठीक है।

रवि ने कहा, "जरा अंदर आना!"

रेणु ने वहीं से कहा, "जो मिले पहन लो। देर न करो।"

रवि उसके न आने का कारण समझ गया। वही पहनकर आ गया। रेणु सिर नीचा किए रही।

खैर, सब चले। मल्लिका ने पूछा, "दीदी! कुनी!"

"लो याद ही न रहा। उसे दुर्लभ के यहां छोड़ आती हूं।"

"जागने पर तेरे सिवा कहीं न रहेगी। साथ ले लो!"

"ना। अभी सोएगी। जागने पर भेज देगी। कुछ तबीयत ठीक नहीं। न लेना ही ठीक रहेगा।"

सब निकले। विवाह की सालगिरह! वहां कटक के सब धनी-मानी निमंत्रित हैं। घर पर रोशनी, सजाया है। रेणु सोचती है कितनी सालगिरह गई। रवि ने मामूली कोई उपहार तक नहीं दिया। एक गहरी सांस निकल गई।

एक कमरे में बड़ा टेबुल। अतिथियों के उपहार सजे हैं। मल्लिका गर्व से रेणु को दिखा रही है। रवि उनके पीछे है। अचानक फाटक पर बच्चे की रुलाई उठी! रेणु चौंकी। कुनू जाग उठी! मुझे खाएगी। मुझे न देखा तो गुस्सा हो गई!"

रेणु बाहर आ गई। दुर्लभ की स्त्री बच्ची को देकर चली गई।

कुनू मां की गोद में रही ही नहीं। एक बार उधर देख आंख फिरा ली, रोने लगी। रवि ने लेने की चेष्टा की, पर पापा के पास नहीं जाएगी। रोने की अजीब आवाज में घर के सब लोग जमा हो गए। कुनू सबको देख सहमकर फिर रोने लगी। कुनू ने रेणु को देखा ही नहीं।

गोद में ले मल्लिका खिलौने दिखाने लगी। कुनू ने सब फेंक दिए। एक दासी ने हंसी में कहा, "ये पसंद नहीं?"

रेणु ने आंख तरेरकर उधर देखा। वह मुंह फेर चली गई। जो भी मल्लिका ने दिखाया—कुनू सबकी उपेक्षा कर गई। सुंदर आंखें अधीर होकर कुछ खोज रही हैं। रोना बढ़ गया। रेणु घबरा गई।

एक नौकरानी ने कहा, "ये मां को पहचान नहीं पा रही है।"

रेणु ने कड़ककर कहा, "पहचानेगी क्यों नहीं। जिद्दी हो गई है।"

नौकरानी ने कहा, "मांजी साधारण साड़ी पहनें। गहने हटा दें। वह पहचान लेगी।"

रेणु ने लाज-क्रोध में उधर देखा। सारा गुस्सा कुनू पर। एक थप्पड़ दी—वह चुप हो गई। हाथ-पांव सब कठिन हो गए। मुट्ठी भींच रेणु की गोद में गिर गई। रेणु ने कहा, "अरे! ये क्या हो गया?"

सबने दौड़कर पानी छींटा। कुनू को होश आया। आंखें खोली। फिर डरकर रोने लगी। वही नौकरानी कहने लगी, "मां हो, समझती नहीं? पहचान नहीं पाती। इसने कभी गहने नहीं देखा।"

वही करना पड़ा। पर मल्लिका के यहां ऐसी साड़ी कहां! घर जाकर रवि लाया। रेणु लाज, क्रोध अपमान रोक एक-एक कर गहने उतारने लगी। साड़ी बदली। मल्लिका ने दिखाकर कहा, "देख—तेरी मां!" कुनू उछलकर गोद में आ कर दुबक गई।

सबको चैन आ गया।

रेणु सिर नीचा किए रही। ऊपर देख नहीं पाई। मल्लिका के कहने पर कुछ खाकर जल्दी घर चली आई। कुनू को धम से पलंग पर पटक कर सो गई। रवि ने देखा हिचकियां भर रही हैं । स्नेह से पीठ सहलाई। कुनू घुटनों के बल आकर मां की गोद में मुंह रख सो गई। कुछ समय बाद रेणु उठी। रवि की ओर देखा, कुनू को गोद में लेकर कहा, "इस गुड्डी ने तो किसी का छलावा नहीं रहने दिया! अच्छा हुआ! ठीक हुआ!"

मुर्गी पालन

गोविन्द के पांच साल के पपू के नए सींग उग रहे हैं। जहां खोद सकता है, सींग लगा माटी खोद देता है। सुबह होते न होते कागज लेकर ऊंची आवाज में पढ़ने बैठ जाता है। कुछ दिन से 'अ-आ' सीख लिया है। मगर इस बात का प्रचार खूब कर देता है। इस प्रचार के लायक है या नहीं, उससे क्या हानि-लाभ होगा—इसकी फिकर नहीं। बापू को छबील वाली किताब लाने को कह दिया। छबील वाली किताब सवा रुपए से कम में नहीं मिलेगी। अतः मुर्गी पालन पर एक सरकारी बुकलेट अपने दफ्तर से लेते आए। पपू उसे ऊंची आवाज में पढ़ता है—

ए...हा...स...स...न...स...स...द (स्वतः सिद्ध) अ...व...द...व... गठन...श...र...र...(शरीर)...ड...स...ब...द (बुद्धि)...ए...हं...(स्वास्थ)...

पपू मुर्गी पालन के बारे में पढ़ता जा रहा है। अर्थ समझे या नहीं। पर ध्वनि पर वह मुग्ध है।

सुबह नहीं हुई। फजर हो रही है। दूर पूर्वी क्षितिज पर नीलाभ पर्वत रेखा उज्ज्वल गुलाबी आभा धीरे-धीरे रक्तिम हो रही है। उस पर कुछ दूर हल्दी रंग की उजास और उस पर बैंगनी। उस पर असीम अनंत आकाश...नीलम। पश्चिमी आकाश में शुक्ल दसवीं का चांद फीका हो आया। परंतु अगस्त्य अभी भी चम-चम चमक रहा है। जाड़ों की भोर में हल्की हवा का झोंका अपने झरोखे को धकेलकर अंदर आ गया। कहता है—उठो, जागो! मगर गोविन्द चादर को गले तक खींचकर पहले की तरह लेटे सोचते जा रहे हैं।

सोचते जा रहे हैं जीवन की गति। अभावों में घिरा मन पुराना विश्लेषण छोड़ नहीं रहा। नींद टूटते ही पहली चिंता, दुश्चिंता कह लें, आसन्नप्रसवा पत्नी के स्वास्थ्य और प्रसव को लेकर है। यह सातवीं संतान होगी। हर बार पत्नी के स्वास्थ्य के लिए कुछ न कुछ औषधि दे पाते थे। तब हालात और थे। अपने घर में थे। संयुक्त परिवार में और दो भाइयों के साथ थे। गांव पास में होने के कारण खेत से चावल आ जाते। तबादले के बाद किराया तीस रुपए चावल खरीदकर अपना खर्च चलाना ही मुश्किल होता। उसके विचार इस समस्या से ही चल पड़ते। परंतु स्वयं पूछकर

स्वयं उत्तर देकर जहां पहुंचे, उसकी जकड़ और ही होती। पहली बार वे क्षोम, दुःख, और दूसरों के सुख से ईर्ष्या की चपेट में आ जाते। आंखें उदास, छलछलाई होतीं। सांस छोड़कर सोचते—मानता हूं कि उस महान पुरुष को जानना जरूरी है, परंतु बार-बार दुःख-दर्द, ईर्ष्या, क्रोध, हिंसा, लोभ, कामना आकर मोहरे के रूप में खड़े हो जाते हैं। बाधा पैदा कर देते है। क्यों? क्यों? छिः, धिक है यह जीवन! क्षुद्र कामना, ऊंची आशा, सबको बहादुरी दिखाने की इच्छा के कारण लोभ, ईर्ष्या, द्वेष अपनी ओर खींचता है। विराट आनंद तो उधर ही पड़ा रहता है। मन जरा भी नहीं हटता। क्या करूं? कर भी क्या सकता हूं? इसे कैसे रोकूं...?

हताशा में गोविन्द की आंखों से दो बूंद आंसू झर पड़े। भगवान के प्रति व्याकुलता भर गई। मन में आशा हो आई। पर मन कहता रहा—यह व्याकुलता है। इसमें मोह है, मोह से जन्मे किसी भाव पर विश्वास नहीं करना चाहिए। गोविन्द की भौंहें सिकुड़ गईं। सांस रुंध गई, फिर सतेज हो गए। भगवान के बारे में सोचते हुए फफक उठे...इस बात पर मन में जो गर्व था...वह धूल में मिल गया। फिर अपने लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि देख उनसे घृणा होने लगी।

चादर में हाथ जोड़ भगवान से प्रार्थना करने लगे—हे मोहन! दयानिधि, इन कांटों से उबारो। आनंद रूप दिखाओ। सारी पृथ्वी सुंदर दिखे!

सुनो! समझो, मोह में न पड़ो! सोचना मत कि तुम अन्य जीव से ऊपर हो! तुम्हारे अंदर प्राणी भाव है। जिसे महान समझा, उस पर धन्य होते हो, अपने अंदर का अस्तित्व देखकर स्वयं से घृणा हो रही है, ये भाव जीवन से जुड़े हैं। शरीर व मन के मेल को जब ओतप्रोत भाव से स्वीकारा है, तो दोनों भाव स्वीकार करने का साहस व विनय संचय करो। अपनी महान विचारधारा पर तुम यदि गर्व करते हो, आनंदित हो, दुश्चिंता पर स्वयं से घृणा करते हो, तो औरों के मोह में पड़कर घृणाकारी बनोगे। धीरे-धीरे तुम्हारे अनजाने मन संकुचित हो जाएगा। वैसे मन को भगवान पर क्या विश्वास होगा? महान और विराट का स्वाद कहां से पाएगा, बाहर से स्वयं को खींचकर, घृणा से हो या बहादुरी से, अपने प्रति मोह पैदा करे!

गोविन्द फिर गहरी सांस छोड़कर कहने लगे—इतने दिनों बाद समझा डा. जेकेल और मि. हाइड की करुण कहानी। भले-बुरे को मिलाकर डा. जेकेल ने पूरा कुमानुप बनाया। पूरा सुमानुष नहीं। जो शरीर संग आया है, उसकी तरफ ध्यान न देकर मैंने सोचा, प्रकोप बढ़ाकर क्या लाभ? वरन उसके अस्तित्व से मन का सत्य उस महान का परिचय पाऊं तो वह काम आए।...तो वही हो...वही हो...

हे भगवान! तुम सत्य! आंख में आंसू आ गए।

ऊं...हूं...आंसू झरना बड़ी बात नहीं, वैसे अच्छा है। अपने अंदर देखो, सबको प्रेम कर पाते हो? जरा-सा तार पकड़ मन के गहरे गया।

गोविन्द मन ही मन हंस पड़े, 'लो सावधान हुआ' कह उठ गए।

पपू मुर्गी का अंडा पकाने की प्रणाली पढ़, चूजे पालन पर पढ़ रहा है, सारी पढ़ाई में भूकंप पैदा कर रहा है। मां उठकर आ गई, माथे पर हाथ फिरा रही है। पपू आग्रह में मां को अपनी किताब का कवर दिखा रहा है। चित्र खूब मनोरम है। तिनरंगा चित्र है। गोलार्ध का चित्र। भारत और ऊपर एशिया, उस पर कुछ अंश यूरोप। भारत का चित्र गाय के थन-सा झूल रहा है। गोलार्ध के पीछे किसी महिला के कमर तक का चित्र, मानो ठीक गोलार्ध पीछे से उतरा है। बिंबाधर पर अधखिली हंसी, आंखों में आशा की चमक। बाईं बगल में मुर्गी दबाए। एक मुर्गी केरल पर, पीछे में है दिल्ली। महिला का दाहिना हाथ नेह में मुर्गी की पीठ थपथपा रहा। मुर्गी के ठीक पूंछ तले नीला अंडा लटकता हुआ, दूसरी सफेद दिल्ली पर। दिल्ली पर का मुर्गा पक चुका है। उसमें से मुर्गे निकलकर बेशुमार, भारत भर में फैल रहे हैं।

पपू चित्र देख आश्चर्य तथा उत्साह से भर उठा, "यह मौसी...ना मां? मुझे देख रही है...मौसी?"

मां चित्र देखने के बजाय उदास निगाह से पहले की तरह आकाश की ओर देखने लगी। किसी जटिल सांसारिक आर्थिक समस्या के समाधान की सूचना की तरह उसने हुंकार भरी।

गोविन्द उठकर पत्नी के करीब आ बैठे, फोटो देखने लगे। चित्र की ओर आग्रह नहीं। कई दिन की आशा पूरी करने का मौका पाकर पपू के मन में खुशी भर देने की बात सोचने लगे। पर इससे पहले पत्नी का मन टटोलना चाहा। उनकी सूनी, उदास दृष्टि से मन का पता नहीं चला। स्पर्शेंद्रिय अब काम कर रही है या नहीं, यह भी पता नहीं। गोविन्द की इतनी बड़ी काया उनके पास है, इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखी। गोविन्द आश्चर्य में पत्नी को देख उसके आगे अंगुली हिला बैठे। कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। उनकी पलक तक न हिली। थिर पुतलियां। बस माथे पर रखी दाहिने हाथ की छिगुनी हिल गई। गोविन्द ने सोचा चलो इतना ही बहुत है। इशारा समझने लायक है।

पपू को सहलाया, "क्या पढ़ा रे! यह चित्र क्या है?"

पपू ने कहा, "मुर्गी ले दो। रखूंगा। मौसी ने पूछा रखोगे?"

कब?

अभी तो कहा।

मौसी कहां है?

ये रही, चित्र को दिखाया। जिद करने लगा कि 'टुपू के यहां कल दो मुर्गियां रखी हैं। मुझे आज दो।"

गोविन्द को समझने में देर न लगी कि जमीन तैयार है। इसमें बीज डालते ही पेड़। गोविन्द की कई दिनों से इच्छा थी मुर्गी रखें। मन में कितनी कल्पना

की है...अंडे का पोच, आमलेट, करी खाई है, कई मुर्गियां हैं...कभी-कभी रविवार को हलाल कर मुसलमान बनाते हैं।

मौका देख जब-जब पत्नी को कहा, उसके मन का पारा चढ़ गया। नाक फनफना कर कहती, "इसे पठान का घर बना डालो! यहां मुर्गा! लक्ष्मीनारायण की पूजा होती है रोज...याद रखो।"

चैतन्य की भंगिमा में गोविन्द दाहिनी हथेली उठा सिर खुजला समझाने के लिए मुंह खोलते कि पत्नी तुनककर कह उठती, "जीते जी न होने दूंगी...नहीं होने दूंगी।"

गोविन्द हताश निगाह में सांस छोड़ घर से बाहर हो जाते। कई बार हुआ यह नाटक।

आज गोविन्द की सारी कल्पना साकार होती लगती है। पपू कुछ जिद पकड़ ले, बस। ब्रह्मा तो क्या, पपू की मां भी डिगा न सके। मन ही मन डकार लेकर बोले, "भगवान तुम ही हो! मेरे स्साले के तर्कशील मन ने माना ही नहीं तुम्हें।" आपात सामंजस्य में मामूली-मामूली बात को कार्य-कारण से जोड़कर सोचते, 'मेरी इच्छा कितने सुंदर ढंग से पूरी हो रही है। पपू की चित्रवाली किताब की जिद, मेरा बिना उद्देश्य के सिर्फ चित्रमाला के रूप में 'मुर्गी पालन' लाना—सारी इच्छा पूरण की परिस्थिति आ गई।'

'चुप! पपू' मां गरज उठी।

गोविन्द समझ नहीं सके कि यह गरज किस पर है? उन्होंने गौर से देखा।

पर पपू डरने वाला नहीं। शेर का बच्चा है। गोविन्द ने मन ही मन उत्साह दिया, छोड़ना नहीं, जिद रखना।

मां को कसकर धकेल पपू उठ बैठा। अब गोविन्द हताश हो गए। स्साला गीदड़, शेर बनता है!

लो, मुर्गी को रस्सी से बांधे-बांधे आ रहा है।

गोविन्द और उसकी पत्नी शीतल युद्ध भूलकर एक साथ कह उठे, "अरे, कहां से ले आया?"

"मौसी ने दिया है। कल वादा किया था, आज देने के लिए। दोनों समझ गए कि यह टुपू की मां को कहकर लाया है। वह पैसेवाले घर की है। चीखे, "यह छोकरा सब जगह हमारा सिर नीचा कराएगा। जा इसे लौटा कर आ..."

पपू ने हंसकर अपनी मां की परवाह नहीं की। मुर्गी को किसी की चिंता न थी—जमीं पर दाने चुगती हुई हालत परख रही है कि मकोड़ा खाने लायक है या नहीं। मां ने चटाक से थप्पड़ रसीद कर उसके हाथ से मुर्गी की रस्सी ले ली। पपू रो पड़ा। लोटा-बाल्टी आंगन में फेंकने लगा। मां को तो आदत पड़ गई है। उसने परवाह न की। वह मुर्गी लौटाने चली तो पपू ने एक और उपाय पकड़ा।

मां के पांव पकड़ करुणा में देखने लगा–

मां हंस पड़ी, "ठीक है जा!" वह हंसते-हंसते मुर्गी बांधने चल पड़ा। मां चली टुपू के घर माफी मांग कर मुर्गी के पैसे देने।

इसके बाद मुर्गी का घर बना। धान खरीदा गया। एक और मुर्गा लाकर उसका अकेलापन मिटाया गया।

पर अंडे कहां? महीना भर हो गया। अंडा नहीं। गोविन्द ने गुस्से में आकर मुर्गी के चरित्र पर तीखी टिप्पणी कर डाली–ये दो सती आ गई हैं हमारे घर!

मगर इसमें मुर्गी का कसूर न था। उस दिन वे समझ गए। मुर्गी की कदम-कदम पर पपू रखवाली कर रहा है। मुर्गा जैसे ही मुर्गी के पीछे दौड़ता, पपू भगा देता। इसका उपाय? कौन समझाए? वह कैसे समझे!

गोविन्द ने हंसकर पत्नी को बताया। मां ने मुस्काकर कहा, "ठीक हुआ, बरामदे को हग-हगकर गंदा कर डाला।"

तभी मुर्गी का पीछा करते-करते मुर्गा कमरे में आ गया। मुर्गे पर पपू ने ढेला फेंका। मुर्गे का उधर ध्यान नहीं। मां ने बीच में उठाकर पपू को गोद में भर लिया। उसने छटपटाकर कहा, "छोड़ो...वो उसे काट लेगा।"

मां ने कहा, "अरे उस मुर्गे के गले में छोटे-छोटे अंडे हैं। वो काटे, कसकर पकड़े तो मुर्गे के वे कीड़े इस मुर्गी में चले जाएंगे। तब मुर्गी खुद अंडा देगी। उससे कई नन्हें चूजे हो जाएंगे!"

पपू ने छटपटाना बंद किया। कान लगाकर सुना। गोद से उतर कर मुर्गी की ओर देखा। तब तक अपना नियम पूरा कर मुर्गा जा चुका था।

पपू ने जब देखा कि सचमुच कुछ दिन बाद मुर्गी ने टप से अंडा दिया, उसने खुशी से मां को दिखाया। उसके बाद मुर्गे को नहीं टोका।

अब गोविन्द के दड़बे में कई मुर्गे-मुर्गियां हैं। रोज अंडे भी होते हैं। चार से कम नहीं, गोविन्द मजे में आमलेट पोच खाते हैं। पर मुर्गा रोस्ट या अंडा करी कभी नहीं मिली। पपू की मां को इसमें घोर आपत्ति है। जिसे पाला, उसे काटूं? राक्षसी बनूं!!

मगर गोविन्द का राक्षसी भाव नहीं गया। पपू की मां दिन पर दिन परेशान होती जाती। घर-बरामदा धो-धोकर थक गई। पपू का मुर्गों की ओर उतना लगाव नहीं रहा। मौका देखकर मां ने सोचा–सारे मुर्गे पड़ोसी को दे दूं।

सुबह मूसलाधार बारिश हो रही थी। पड़ोस का नौकर आया, मुर्गे ले जाने। मां ने रसोई से आकर देखना चाहा, मुर्गियों का दड़बा है या नहीं। गोविन्द खाट पर लेटे सोच रहे हैं, कैसे पत्नी को रोकें। पपू की मां ने दबे पांव आकर इशारे से कहा, 'आओ, देखो!' उसके चेहरे पर चमक देख गोविन्द अचंभे में भर गए।

गोविन्द कुछ समझ न सके। पत्नी के पीछे चल पड़े। मुर्गी-घर के पास जाकर

देखा, एक चूजा सिर नीचा किए खड़ा है। दूसरा लकड़ियां के ढेर पर बैठा है। एक चौकन्ना चारों ओर देख रहा है। इसमें देखने को क्या है—गोविन्द समझ नहीं पाए।

पपू की मां ने कहा, "नहीं देख पाए! धत्! मुर्गियों में ऐसा भाव है? इसकी मां वर्षा में आकर यहां खड़ी हुई, कुकड़ू-कूं कर आवाज दी। ये चूजा भींगकर पास आकर खड़ा हुआ। दोनों एक-दूसरे को देख चांच से चोंच सटा खड़े रहे। क्या बात करने लगे? मां ने कहा होगा—क्यों भींग रहे हो? फिर चूजे ने पता नहीं क्या कहा, मां ने दो-चार बार चूमा, फिर मुंह फेर चल दी। तब से चूजा सिर नीचा किये खड़ा है। वर्षा में नहीं जा रहा। कितना सुंदर है! मांएं बच्चों को यों पालती हैं! ना ना, ये मुर्गे में किसी को नहीं दूंगी। कहते-कहते आंखें भर आईं।"

गोविन्द ने मुर्गी की ओर नजर की। पूछा, "ये यहां क्यों बैठी है?

अंडा देगी। अभी चारों ओर शोर मचा रही थी। यानी कह रही थी—अंडा देने की जगह बता दो मुझे! अंडा देकर मानो कंपाकर कहेगी—ले जा अंडा...खा ले अंडा। अजीब बात है।

गोविन्द की आंखें भी छलछला आईं। कहा, "अजीव है इनकी दुनिया। सुबह उठे। चल पड़े बाहर भोजन की तलाश में। दिन भर बाहर खा-पीकर शाम तक वापस आए। रखने का पैसा भी खर्च नहीं। सबसे पुष्टिकर खाद्य ये उपलब्ध कराते हैं। मगर अंडा देने के बाद किसने लिया। किसने खाया, हमें फिकर नहीं। होती तो हमारी क्या हालत होती?

फिर, ये सबसे बलकारक खाद्य देते हैं।

"अजीव है! ठीक तीन बजे जागकर सारे मुर्गे बांग देंगे... कुकड़ू कूं...।" पपू की मां ने हाथ जोड़कर मना कर दिया।

गोविन्द छलछलाई आंखों से लौटकर खाट पर सो गए—अजीब है दुनिया का नियम!

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः,
अविज्ञातं विजानतां विज्ञतमविजानताम्।

जो सम्यक ज्ञानी हैं वे सोचते हैं कि वे ब्रह्म को नहीं जानते हैं। जो सम्यक ज्ञानी नहीं हैं वे सोचते हैं कि वे ब्रह्म को जानते हैं।

उस दिन रात बीतते न बीतते गोविन्द की नींद टूट गई, देखा कि दरवाजे के पास में मुर्गे कतार में लेटे हैं। रोज ऐसे ही सोते हैं। परंतु आज उनकी भाषा अच्छी तरह समझ गए। पपू की मां को जगाकर कहा, "ये मुर्गे कह रहे हैं—किवाड़ खोलो, हमें धंधे पर जाने दो।"

पपू की मां ने कान में कहा, "अरे! हां!"

दोनों किवाड़ खोल बाहर आए। दड़बा खोले। मुर्गे पीछे-पीछे दौड़े। सब

हड़बड़ाकर भाग छूटे।

गोविन्द और पपू की मां ने मुग्ध हो उधर देखा। आकाश को देखकर बोले, "हे भगवान...तेरी लीला..."

गोविन्द ने कहा, "इधर भी देख। घास को देख। मुर्गे देख! वो उधर देख। चींटियों की कतार जा रही है, दीवार के सहारे। मादा चींटियां मुंह में अंडे लिए छूटी जा रही हैं। देखो, एक नन्हीं मकड़ी ताक में उधर कतार के पास बैठी है। मौका पाते ही चींटी के मुंह से अंडा झपट लेगी!!!"

तो यह सब भगवान की लीला है! अजीब है!!!

तलाक

वह दिन आषाढ़ का पहला दिन न था। रमारंजन क्लांत भी नहीं था। उमर चालीस। विरह वेदना का अनुभव भी नहीं हो रहा था। मिलन की वेदना अंग-अंग में हो रही थी। पिता ने पता नहीं क्या सोचकर नाम 'रमारंजन' रखा था। विवाह के दो वर्ष बाद ही मित्रों ने कहा—नाम सार्थक हो गया है। हालांकि मित्रों ने अभी तक यह विचार नहीं बदला। मगर रमारंजन को लगा, यह नाम तो मेरा मजाक उड़ा रहा है। फिर भी बिजली की कड़क, बार-बार कौंध, बरसात की रिमझिम उनके मन में कुछ-कुछ कांत भाव भर रहा है। पड़ोस की ग्रामीण बहू ने ग्रामोफोन पर लगाया है—

ए मन दिने तारे बा याय
ए मन घन घोर बरसाय

ऐसे समय कौन किसे क्या कह रहा है, जानने की इच्छा हो गई, रमारंजन ने पड़ोस की ओर खुलने वाली खिड़की की ओर खड़े ही हुए कि पीछे से आवाज आई, "सुन रहे हो! स्कूल से आते समय मनी बारिश में भींग गया। तुम तो कुछ बोलोगे नहीं। नौकर पांच की जगह छः आने में बैंगन लाता है...यों आकाश को ताक रहे हो! मेरी तो किस्मत ही..."

सिर पीटने की आवाज सुन रमारंजन कुछ क्षण आंख मूंद खड़े रहे। मन ही मन कहा, "हाय कवीन्द्र!" उसने गहरी सांस छोड़ पूछा, "क्या बोली? रमा!"

रमारंजन ने 'रमा' संबोधन इस तरह किया मानो प्रेमिका का नाम ले रहे हैं। मगर बेकार! रमादेवी ने कहा, "देखो! हजार बार कहा है, नाम लेकर न बुलाओ। जरा भी अच्छा नहीं लगता। बच्चे बड़े हो गए। ये लाड़ अच्छा नहीं लगता। मुझे मनी की मां कहकर बुलाया करो।"

रमारंजन ने फिर आंख मूंद पूछा, "क्या? क्या कर रही थी मनी की मां?"

"कुछ न सुना? हे भगवान! सब इस कान से उस कान निकल गई!"

रमारंजन ने खीझकर कहा, "मनी की मां! ये बातें कान से निकल जाती हैं, पर मेरी बातें कान से जाकर मुंह से आएं...तब..."

आगे बिना बोले कमीज पहन, छाता लेकर रमारंजन चल पड़े प्रेममय के घर की ओर। प्रेममय बचपन का साथी ठहरा। अब साइकोलाजी का प्रोफेसर है। गप्पों का बड़ा खजाना है उसके पास।

प्रेममय की बैठक में छाता टिकाकर आराम कुर्सी पर बैठ गए। फिर हुकम दिया, "प्रेम! बाल्टी भर चाय, थाली भर पकौड़ी नौकर को लाने को कहो, संध्या को लाने न कहना, यार!"

"क्यों? संध्या से इतनी वितृष्णा क्यों? उदासीनता का नाटक कर रहे हो क्या! दोनों में तलाक की हालत है..."

रमारंजन अचानक चेयर से उठकर समर्थन में कहने लगा, "पत्नी को तलाक देगा? कारण मत पूछ।"

प्रेममय ने कहा, "ओ! समझा, नाराज होकर आया है?"

गहरी सांस छोड़कर रमारंजन ने कहा, "ना प्रेम, और नहीं निभ सकता। जिंदगी बेकार हो गई। जरा भी सरसता न मिली विवाहित जीवन में। उमर और होती तो तलाक देकर एक और...मतलब एक और...। हरदम किचिर-मिचिर, आदमी कितना सहे...आखिर..."

प्रेम को हंसी आ गई, "तलाक ही तो देगा? एक बात सुन ले। एक बार एक सेठ तीर्थाटन को निकल पड़े। जाते समय कह गए—देख, मैं परदेश जा रहा हूं। कब लौटूंगा पता नहीं। मुझे विश्वास है तुम अनुपस्थिति में चला लोगी। अगर बिल्कुल न सको, तो तुम एक उपाय करना। सामने जितने लोग टट्टी जाते हैं, उनमें जिसका लोटा सबसे पुराना हो, उससे मदद लेना—यह कहकर वो तो तीर्थाटन पर चला गया। कई दिन हो गए, पत्नी चला न सकी। पति का कहना मान सुबह खिड़की के पास बैठ गौर से देखने लगी। उनमें से एक का लोटा बहुत पुराना लगा। तीन-चार जगह छेद, पेंदा पिचका, पानी रिस रहा था। समझ गई, यही सबसे पुराना है। नौकर भेजकर उसे बुला भेजा। भोजन-पानी देकर अपनी बात कहने का तय कर लिया। मगर कुतूहल रोक न सकी। पूछ लिया—महाराज! एक बात समझ नहीं पाती। बुरा न मानें तो पूछूं।

उन्होंने कहा—हां, पूछो।

"ये लोटा तीन-चार जगह रिस रहा है। पिचक गया है। इसकी बजाय नया क्यों नहीं लेते?"

कुछ क्षण चुप रहकर वे बोले, "देखो, पिछले पंद्रह साल से अपनी नंगई इसके आगे रखता रहा। फिर किसी और के आगे नंगई दिखाने का मन नहीं करता।"

विरह से आतुर स्त्री पति की बात का गूढ़ रहस्य समझ गई। उसने सिर नीचा कर लिया।

प्रेममय मिश्र, रमारंजन के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ने के लिए कुछ भाव

विभोर होकर कहने लगे, "रमारंजन पंद्रह वर्ष से जिसके आगे अपना नग्न परिचय दे रहे हो, उसे छोड़कर, नई का वास्तव परिचय पा सकोगे? उसके आगे अपना असली रूप शुरू से..."

रमारंजन ने विरोध कर कहा, "ना ना, प्रेम! यह बंधन नहीं सह सकता। जिसके संग प्रेम नहीं, उसके साथ बंधे रहने में कोई तुक नहीं। वह कष्ट तू नहीं समझ सकता।"

प्रेममय को हंसी आ गई, कहा, "मन...मन...मन! ऐसी फिसलनभरी चीज और कुछ नहीं। पति-पत्नी के बंधन को मन पर छोड़ना ठीक नहीं। मन तो बहुत कुछ चाहेगा। जैसे एक चीज को आग्रह से चाहेगा। उसी को मन फिर फेंक देगा। जिस बंधन पर सारा परिवार, समाज, शिक्षा, संस्कृति निर्भर है, उसे मन की चाहत जैसी फिसलनभरी बात पर छोड़ देंगे? तू मुझे दकियानूस कह ले, माथे पर टोपी रखने, उतारने की तरह तलाक का स्वांग पसंद नहीं। यह पति-पत्नी की तीन टांग की दौड़ है। थ्री लेग्ड रेस। समझे! पति का एक, पत्नी का एक पांव स्वतंत्र है। पर दोनों के एक-एक पैर आपस में बंधे हैं, अलग नहीं हो सकते। इन बंधे पांवों को समाज कहो, शिक्षा कहो, जितना ठीक से चल सकोगे, उतना ही सुख मिलेगा।"

फिर भी रमारंजन ने कहा, "ना प्रेम, तेरी बात समझता हूं। पर मन नहीं मानता।"

प्रेममय ने गंभीर हो कहा, "एक और सुन, यह कहानी सच है, तूने इस बाबू का नाम सुना है?"

"इस कोई नाम है?"

"मिहिर की बात नहीं सुनी? वो मिहिर...वही हिस्ट्री में एम. ए. के बाद सेक्रेटेरियट में क्लर्क बन गया।"

"अच्छा, मिहिर! पटना में साथ पढ़ता था। इस कैसे बन गया?"

"वो भी एक इतिहास है। बात-बात में वह इस कहने लगा है। वो फाइल—इस मैंने दे दी है...इस वह...इस..."

अचंभे में रमारंजन ने पूछा, "पढ़ाई के दिनों में तो ये दोष न था। अचानक हो जाता है? तू तो साइकोलाजी का मास्टर है।"

वर्षों बाद आज अचानक भेंट हो गई रोड पर। मैं कालेज से लौट रहा था। उन दिनों जो हंसमुख, तेज था, आज वह गंभीर, उदास है। मुझे देख मुस्कराकर कहने लगा—प्रेम है? इस!—उसकी बात सुनकर मैं चिढ़ गया। कहा—मुझे देख तू खीझ क्यों गया? उसका चेहरा पीड़ा में भर गया। आहत स्वर में कहने लगा, "नहीं यार, इतने दिनों बाद तुझे देखा तो खुशी हो रही है।" मैंने पूछा, "तो 'इस' क्यों? उसने माथे पर हाथ रखकर कहा, "इस कह डाला? यार छह-सात साल बाद ये एक दोष आ गया है।" कुछ रुककर कहा, "तू नहीं जानता। आजकल मेरा

नाम ही 'इस बाबू' पड़ गया है।" मेरे मन में कुतूहल पैदा हो गया। घर बुलाकर कई सवाल पूछे। पता चला—नदी जब पहाड़ों में चलती है, चंचल, भावुक होती है। समतल पर आने के बाद धरती उर्वर करती है, हम उसे ही महत्व देते हैं। पर जरा गहरे सोचें, उस भावुकता पर सब निर्भर नहीं होता। जब समतल जमीन पर आती है, कैसी माटी लाती है, इस पर निर्भर करता है। मिहिर का यौवन और वह भावुकता कंकरीली धरती पर है। समतल पर आने के वाद...यानी दांपत्य असफल रहा।

"लवंगी, उसकी औरत सुंदर व स्वस्थ है, तो क्या हुआ? मिहिर चाह न सका उसे। प्रेम का वह आवेग मर चुका था। पत्नी के प्रति उसमें कोई रुचि नहीं रही। खैर...इस दोप की बात सुनो।"

छह-सात वर्ष पहले बेटी का विवाह कर विदा के साथ सोचा—महीने भर की छुट्टियां हैं, घूम आएं। लवंग ने मिहिर से कहा, "महीने भर की छुट्टी है। कहीं घूम आएं। ससुर की अस्थियां हैं, गया ही हो आएं। कलकत्ता-पटना भी हो आएं तो अच्छा लगेगा।"

गहरी सांस लेकर मिहिर बोला, "सो तो ठीक है। पर अकेले अच्छा लगेगा? फिर पैसों की दिक्कत है।"

लवंगी ने हंसकर कहा, "मेरी न सोचो। मैं कैसे जा सकती हूं? बेटी ससुराल से लौटेगी। कितने काम हैं। मेरा जाना संभव है? व्याह के खर्चे से कुछ बचाए हैं। मैं दे देती हूं। मेरी सौगंध..."

मिहिर आपत्ति न कर सका। तीन-चार साल से मन और देह दोनों टूट चुके थे। कुछ दिन स्थान बदलने की जरूरत थी। पर उसके लिए पैसे चाहिए। दोनों का मेल मुश्किल था।

वह भाग्य को दोष देकर चुप था। जाने को तैयार था। जरा-सा सुख पटना में पाया था। पहले वहीं चला।

गंगातट। वहां जाकर किनारे घूमने लगा, कमीज उतारकर गंगा में नहाने चल पड़ा। तैरने लगा।

"शाम को पागल हो गया? रमारंजन ने पूछा।

"ना ना! पद्मा वर्मा की बात याद नहीं?"

"हां! इतिहास की छात्रा। जस्टिस वर्मा की बेटी। इस, कितनी सुंदर थी। अब पटना कालेज में इतिहास पढ़ाती है।"

"हां, पढ़ाई के दिनों में गंगा में तैरते समय डूब रही थी, उसी रानीघाट के पास मिहिर ने बचाया। तुझे याद नहीं?"

"अरे हां-हां!"

"वही वात याद आ गई। याद ही नहीं रहा कि क्या करता।"

"हमलोग सोच रहे थे ऐसा सौभाग्य कम लोगों को मिलता है। दोनों प्रेम में पड़ेंगे। पर वह है बड़े आदमी की बेटी। मिहिर में क्यों उलझती?"

"फिर क्या हुआ, सुनो। अगले दिन मिहिर कालेज गया घूमने। अध्यापकों से मिलने। हमारे टाइम के सभी प्रायः रिटायर हो चुके। कोई न मिला। टीचर कामनरूम से एक अध्यापिका ने पुकारा। मिहिर पहचान ही न पाया। उसने पूछा, "मुझे बुलाया?"

हंसकर बोली, "हां, ताज्जुब हो रहा है?"

मिहिर ने अधिक अचंभे में कहा, "नहीं...मैंने आपको?"

उसने कहा, "मेरे साथ आइए।"

मशीन-सा उसके पीछे चल पड़ा। कार का दरवाजा खोल कहा, "बैठिए।" मिहिर अचंभे में था।

कार रानीघाट के पास आ गई। कार से उतर उसने पूछा, "याद है यह जगह?"

अब पहचान गया। वह कुछ बोल न सका। उसके होंठ कांप गए। सिर झुकाए खड़ा रहा। पद्मा ने देखा, दो बूंद आंसू टपक गए हैं। पद्मा ने कहा, "मेरे घर चलो।"

मिहिर ने पीड़ा में कहा, "नहीं मि...मि..."

हंसकर पद्मा ने कहा, "मिसेस पद्मा नहीं, मिस पद्मा ही हूं। तुम सिर्फ पद्मा कहो।"

"आप!"

मिहिर वैसे ही खड़ा था। पद्मा ने हाथ पकड़ गाड़ी में बिठाया। घर ले गई। पिछली बातें दुहराई। पद्मा ने पूछ लिया, "शादी की?"

"हां, चार बच्चे हैं। बड़ी का विवाह कर घूमने आया हूं। तुमने शादी क्यों नहीं की?"

पद्मा ने गहरी सांस छोड़ी। चुप रही।

मिहिर ने खेद भरे स्वर में कहा, "माफ करना। अनजाने कष्ट दे दिया।" पद्मा ने टोका, "गलती मेरी ही है। मेरा जीवन व्यर्थ है। व्यर्थ है यह मान, पढ़ाई, इज्जत...आदि...।

मिहिर ने रोका, "मगर बाधा क्या थी?"

पद्मा ने हाथ पकड़कर कहा, "मेरे आभिजात्य का अभिमान। मेरा धन। वो सहपाठी गरीब था। वह कौन था। पता है?"

"ना, तब कमल प्रसाद के साथ...?"

"तुम शायद सोच भी न सको। वो तुम..."

मिहिर कांप उठा।

पद्मा ने कहा, "तुम हिम्मत कर कहते तो आज मेरी..." पद्मा का गला भर गया।

मिहिर भी रो पड़ा। याद आया—'इस' के कारण कैसे सुख से वंचित हो गया। सारा पश्चात्ताप एक शब्द में उभरा—इस...

देर तक दोनों सुबकते रहे। पद्मा ने मुंह उठाकर करुणा में कहा, "नए सिरे से जीवन यात्रा शुरू की जा सकती है? सोचते हो कितनी निष्ठुर हूं। इतने दिन का संसार तोड़ना चाहती हूं। पर उस बारे में न सोचो। मेरा सारा धन तुम्हारी स्त्री और परिवार को दे दूंगी। विवाह भी नहीं करूं, सिर्फ तुम्हें...तुम्हें..."

मिहिर 'हां' कहने ही जा रहा था कि याद आ गया लवंगी का वह करुण चेहरा। प्रेम नहीं कर सका, इस बात पर कभी आक्षेप नहीं किया। अपना सारा सुख छोड़ मिहिर के सुख के लिए लगी रही।

अचानक मिहिर लवंगी के प्रति भावुक हो उठा। काश सब छोड़ वह लवंगी तक पहुंच जाता। मुझे देखकर वह हंस पड़ेगी।

मिहिर ने कहा, "ना-ना...असंभव है, पद्मा। जो बीत गया सो बात गई। जीवन धारा में अब मेरी तिनके की स्थिति है। अपने सुख की खातिर सारा कुछ नहीं छोड़ पाऊंगा। जो चला गया, उसकी बहुत इच्छा थी। मगर जो मिला, वह भी कम नहीं।"

इतना कह मिहिर बाहर आ गया। उसी दिन घर लौट आया। कलकत्ते से लवंगी की खातिर अच्छी-सी साड़ी, एक-दो गहने लिए। पहुंचकर लवंगी को कसकर बांहों में भींच रो पड़ा। मगर तभी वह दोष आ गया—'इस'।

घड़ी देखकर रमारंजन ने कहा—'इस'! कितनी देर हो गई! मनी की मां चिंतित हो रही होगी। चलूं...

होली

ऋतुराज बसंत पधार चुके हैं। ठंड की जड़ता सूरज के करीब आ रही है। बीच में यह रसमय स्थिति। पेड़ कोमल पत्तियों से भरे हैं। पलास वन में आग लगी है। अमराई आम्रमंजरी में कोयल कुहू-कुहू कर अधीर हो रही है। मधुमद लोभी भंवरे, अमराई की गंध में उन्मत्त हो चीखते हैं। चारों ओर पताका फहरा रही है। देह-मन में अद्‌भुत संवेदना का स्पंदन है।

प्रथम वर्षा के मेघ-सा, जिनके किरीट में करोड़ों सूर्य विराजमान हैं, जिनके रोम-रोम में अनेक ब्रह्मांड हैं, जिनकी वंशी निरंतर हर जीव को बुलाती है—वह कृष्ण बसंती वस्त्र आजानुलंबित वनमाला पहने, कमनीय, मोहक किशोर विग्रह बसंतोत्सव में डूबा है। होरी खेलत नंदलाल! अपने मन माधुर्य मिलाकर हम उन्हें नवीन बनाए हुए है, वैज्ञानिक लोग होली का चाहे कोई कारण बताएं!

आज दशमी। मगर एकादशी भी है—पंचदोल पर्व आज से शुरू। कुशभद्रा नदी के इस तीर वाले कुसुपुर के लोग आज से पांच दिन तक राधावल्लभ को लेकर मत्त हो जाते हैं, अबीर खेलते हैं। प्रतिवर्ष की तरह ठाकुरजी घर-घर फिरते हैं, आनंद वितरण करते हैं। होली खेलने वाले अबीर की थाली, ढोल बजाकर गाते चलते हैं, ''राधावल्लभ मोहन खेले होरी'' बच्चे झूमते-झूमते नाचते चलते हैं। सबके चेहरे अबीर में लाल। ताड़पत्ते बांधकर बंदर बनते हैं। किसी को सफेद झक कपड़ों में देखें तो और जोर से बजाते हैं। बच्चे चिल्लाहट में भरे आगे-आगे चल रहे हैं बोल रहे हैं—

कोउ कोउ गावे तो
कोउ कोउ बजावे
कोउ कोउ मारत पिचकारी

दोपहर ढलने को आई। गांव में भ्रमण पूरा कर ठाकुरजी अब नदी की ओर ढल रहे हैं। कुशभद्रा नदी में स्नान कर लौटेंगे। इस बीच होलिया भी वहीं नहा लेंगे।

आज ही इदुज्जुहा की कुरबानी का दिन पड़ गया है। इसी समय रहीम खां कुशभद्रा के उस पार अहमपुर से (जिसे आजकल लोक पाकिस्तानपुर कहने लगे

हैं) निकले जा रहे हैं, नदी पारकर कुसुपुर गांव के राम प्रधान को मुबारक देने के लिए। रहीम की बीवी जेबुन्निसा खाना बनाने में माहिर है। अपने हाथों देवर राम प्रधानजी के लिए खाना पका कर मियां के हाथों भेजा है।

रामू प्रधान और रहीम खां लंगोटिया यार ठहरे। बटाई में रहीम उसकी खेती भी करता है। उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी अहमदपुर के खलीफा हैं। खलीफा और प्रधान वंश की मित्रता आर्थिक-सामाजिक बाधा पारकर चार पीढ़ी से चल रही है। खलीफा वंश प्रधान वंश का सूर्यमैत्री बंधु हो गया है। दोनों वंशों के क्रियाकर्म में दोनों वंशों के स्त्री-पुरुष शामिल होते। शादी-ब्याह में हल्दी तेल जाता है, लावणा आता है। कभी सामाजिक आपत्ति उठी होगी, परंतु अब तो दोनों के बीच बंधुता को सबने आदरणीय मान लिया है। फिर रहीम खां अहमपुर के खलीफा हैं, रामू प्रधान कुसुपुर के गणमान्य आदमी हैं। स्वार्थांधों नै धर्म के नाम पर भारत के टुकड़े कर दिए, फिर भी इन दोनों गांवों में सद्भाव बना हुआ है। वैसे देखें इस दोस्ती ने रहीम और रामू के मानस को बहुत फैला दिया, धर्म के प्रति दोनों मैं आदर भाव है, रामू के घर हो या रहीम के घर...गीता, भागवत, कुरान पर बातें चलती रहती हैं.। लोग मुग्ध होते हैं, आनंद लेते हैं।

नदी तट पर राधावल्लभ जी झूम-झूमकर आ रहे थे। रामू के पोते ने रहीम को देखकर आवाज दी, 'दादा!' बड़े-बड़ेरे। वे अरे-अरे कहते रह गए, पोते ने जाकर दादा की सफेद दाढ़ी में अबीर मल दी। ताली बजाकर नाचने लगा। पहले रहीम खींस निपोरकर हंसा। फिर गंभीर हो गया। याद आया पिछले महीने गोहत्या की बात पर पूरे अहमदपुर वाले उत्तेजित थे। किसी न किसी तरह वह गुस्सा बाकी था। गो मांस खाने से कई रोग होते हैं, अतः न खाना ही भला। हिंदू भाई हमारे भले की खातिर कहते हैं। समझाया, पर अहमदपुरी समझकर भी नासमझ की तरह चुप रहे। यह अपमान मन में सुलग रहा था। गोमांस छोड़ने की तो कोई बात नहीं, मगर जबरन मनवाना, हमारे धर्म और व्यक्तित्व को घृणा से देखने जैसे लगता है। आज पता नहीं क्या हो जाए! तब तक और कुछ बच्चे रहीम को घेर चुके थे। रहीम ने थाली उठाकर ऊंची आवाज दी, "अरे हम मुसलमान हैं।" मगर बच्चे सुनने की स्थिति में न थे। रहीम ने सहमकर अहमदपुर की ओर देखा। इस घटना के बहाने पिछले अपमान का बदला लेने 'मारो साले काफिरों को' 'अल्ला हो अकबर', 'कुरबानी, कुरबानी'। नारे देते हुए लाठी बल्लम, शाबल, कुल्हाड़ी लेकर कूदते आ धमके। इधर एक कुसुमपुरिया ने दौड़कर गांव में खबर कर दी। वे भी 'राधावल्लभ की जय' बोलते आ धमके। नदी के बालू में लड़ाई छिड़ गई।

रहीम अवाक देखता रहा। थरथरा उठा। बाधा देने की ताकत न रही। पर लगा कि मैं दायी हूं। कुछ करना ही होगा। कूद पड़ा, दंगे में कोई आदमी नहीं रह गया था, सब क्रोध में मशीन बने थे। उसकी सुनने वाला कोई न रहा। धक्का

खाकर नदी में छिटक पड़ा। देखा, रामू के बेटे का सिर शाबल से अब्दुल ने एक ही चोट में दो टूक कर डाला। अब्दुल खून में भींग गया। अब्दुल ने गिरने से पहले नव के पेट में शाबल भोंक दी। खून फव्वारे-सा फूट गया। कुछ ही देर में नव और अब्दुल ढेर हो गए।

रहीम सम्हल न सका। चीख उठा, 'मारो काफिरों को'। याद आया—सलातुल उस्त (दोपहर की नमाज) का वक्त हो रहा है। रुक गए। अब? नमाज कभी न छोड़ी। कुरान शरीफ कहती है—इस नमाज पर ज्यादा ध्यान दो। क्रोध में कांप रहे थे। फिर भी कुरान की याद आई—हर इंसान एक है। हमारा गर्व, स्वार्थ, मूर्खता कुफ्र बढ़ाता है...जो संयमी है, खुदा उन्हें प्यार करते हैं...जो भगवान के नाम पर झगड़ा करे, उन्हें छोड़ो। पूरी कोशिश कर भी नमाज में मन नहीं लगा पाया। अब्दुल की लाश पर नजर पड़ते ही हिंदू पर क्रोध, घृणा उसे हिला गई। नमाज में शामिल होकर अपनी बात...काफिर हैं ये लोग...मुंह से कहें इनका धर्म उदार है। इधर सरकारी पैसों से मंदिर बनाएं...ये संख्या में हमसे ज्यादा हैं, अतः जबरन इनकी होली हम मनाते हैं...इनका भरोसा नहीं, पाकिस्तान चलूं...भाई-भाई तो फरेब है, हिंदू धर्म में इतना फरेब...साले काफिर! नमाज की जगह से उठकर, जाकर एक को तो खतम कर ही दूं। फिर कुरान याद आ गई—जिंदगी-मौत खुदा के हाथ में है। दूसरों के पाप पर नजर देने के बजाय उन्हें संवेदना जताओ। मन में अजीब उथल-पुथल मच गई। सम्हाल न सके। दौड़ते-दौड़ते बेहोश हो गिर पड़े। नमाज छोड़ी थी, लज्जा में डूब गए। सूरज तब तक सिर पर आ गया। गीध चक्कर काटने लगे। कुशभद्रा के किनारे अमराई में कोयल कुहू-कुहू कर रही थी। इधर नव-अब्दुल बांहों में मरे पड़े हैं। दोनों दलों में पीटा-पाटी जारी है।

रामू प्रधान को बेटे के मरने की खबर मिली। वह बैलों को दाना-पानी दे रहा था। सुनते ही हाथ-पांव सुन्न हो गया। क्या करें? घर की चीख-पुकार से और घबरा उठा। किसी ने कहा—नव की मां बेहोश हो गई। फिर भी जड़-से खड़े रहे। मगर देह क्रोध में कांप रही थी। पास से कटार उठाई। नदी की ओर चल पड़े। प्रण किया—रहीम को काटकर राधावल्लभ को खून चढ़ाऊंगा। याद आया—युगों से हिंदुओं पर अत्याचार हुआ है, औरंगजेब के अत्याचार...इनका धर्म निष्ठुरता पर टिका है...जाएं साले पाकिस्तान। दौड़ते समय महाभारत की बात याद आई—श्येन रूपी इंद्र कहते हैं—जो धर्म दूसरे धर्म से घृणा करे उस धर्म को, रहीम कहता है धर्म में जबर्दस्ती पाप है। हमारे यहां है सर्वधर्मान् परित्यज्य...रहीम और मैं निरासक्त रहने की कितनी प्रार्थना नहीं की, ये सब चरम परीक्षा के समय बेकार हो जाएगा? हे प्रभु! मुझे शक्ति दो, शक्ति दो...!!

मन ही मन कह उठा

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
पापमानम् प्रजअहि ह्येनम् ज्ञानविज्ञान नाशनम्

दौड़ते-दौड़ते थम गया। मुट्ठी ढीली पड़ गई। कटार गिर पड़ी। मानो हंसकर कह रहा हो—भीरु! सब हिंदू कायर हैं, डरपोक हैं। भगवान ने अन्याय के विरुद्ध लड़ने को समझाया। तुम्हारी उदारता कायरता से जन्मी है। रामू प्रधान ने कटार उठा ली। दौड़े। फिर कुछ देर थमा। लाचारी में ऊपर देख कहने लगा, "हे प्रभु! मैं अर्जुन नहीं कि विपरीत भाव को एक कर सकूं। मुझे बचाओ, बचाओ प्रभु!" कहते-कहते बेहोश हो गिर पड़े।

तब तक पुलिस आकर लाशों के पास पहरा देने खड़ी हो चुकी थी। दोनों दलों के कुछ लोग पकड़े गए। चौकीदार गीध देख रहे थे। कोयल की अधीर पुकार जारी थी। सूरज पश्चिम में जा ढले। पशु-पक्षी घरों की ओर लौट रहे थे। कुशभद्रा की धारा वैसे ही कलकल कर बह रही थी। पृथ्वी वैसे ही घूम रही थी। किसी का कुछ आता-जाता नहीं। राधावल्लभ होली खेल सो चुके हैं।

रात के तीन बजे होंगे। रामू आदतन बिस्तर छोड़कर उठ गया। मुर्गे उधर से बांग दे रहे थे—रामू ने हाथ जोड़ कान लगाए, अल्लाह हो अकबर की आवाज रोजाना की आदत हो गई थी।

बाहर शांत, मौन रात, सुंदर पर उदार, निर्लिप्त! सारी धरती मानो ध्यान में थी, पेड़-पौधे भी ध्यान में थे। सारी घटना फिर आंखों मैं तैर गई। अब वे निर्लिप्त थे। कोई भावांतर नहीं। बस याद आता कि रहीम को इस घटना ने बिस्तर पर डाल दिया। मन में कसक हो गई। धीरे-धीरे नदी की ओर चल पड़े।

रहीम की नींद टूट चुकी थी। वह भी 'राधावल्लभ हे' की आवाज सुन चुके थे। रहीम की दादी ने उस कमरे से खांसते हुए कहा, "अरे रहीम! रामचंद्र उठा नहीं क्या? रहीम, मुंहजले, निकम्मे, जा के देख क्या हुआ?" आगे कुछ न बोल सकी। खांसी के मारे बेदम हो गई। रोज़ की आदत की तरह रहीम को उठाने का मन किया। रहीम उठकर नमाज अदा कर चल पड़ता। रहीम ने कहा, "जाता हूं, अम्मी, फिकर मत कर! खांसी बढ़ जाएगी।" रहीम इस बीच धीरे-धीरे नदी की ओर चला।

नदी की बालू पर आग जल रही थी। छाती धम से रह गई। तो क्या यार ने बिना बुलाए शव जला डाला? आंखें छलछला आईं। आग के पास पहुंचे। तीन विदेशी धूनी जलाकर गीत गा रहे थे—पता चला कि बिहारी थे। पुरी से पैदल आ रहे थे, राह भटक बालू पर टिके हैं। गा रहे हैं—

ललिनि लालन लाल अबीरन सखि गन लालहि लाल।

रहीम विभोर हो वहां खड़ा रहा। गौर से देखा तो वैसे ही अब्दुल व नव गले

लग रहे थे। अब तक पुलिस ने शव पोस्टमार्टम के लिए नहीं लिए। चौकीदार रखवाली कर रहे थे। एक बिहारी पुलिस भी शामिल हो गा रहा था। पास में गीध पांव फड़फड़ा रहे थे। सियार भौंक रहे थे। मानो इन विपरीत परिस्थिति में एक संबंध हो। ताज्जुब है—उनमें से एक ने रहीम से अनुरोध किया—'एक होली सुना भइया!'

रहीम के मन से कोह उठी। न दुःख का न आनंद का। अजीब पीड़ा मन में भर गई। अनायास काफी सिंधू राग का गीत निकल आया—बलमा रे चुनरिया मौ के लाल रंग दे हे मोर पिया! (हे पिया मेरा आवरण तुम्हारे रंग में लाल हो जाए) गले से सुर निकल रहा था—आंसू झरते रहे। गीत के बाद सब चुप हो गए। बोल नहीं निकल रहे थे। प्रशंसा तक नहीं कर पा रहे थे।

अचानक सुभानअल्ला सुनकर चौंक गया। मित्र खड़ा था। गा रहा था—असहा दो अल्ल इलाहा इल अल्लाह असहादो आनून मुहम्मद रसूलुल्लाह...

रामू प्रधान के स्वर ने सबको अभिभूत कर दिया। धीर स्पष्ट करुण स्वर में हर शब्द निकल रहा था। विदेशियों में से एक ने कहा, "जरूर यहां भगवान होंगे। कुरान शरीफ कहते हैं—खुदा का नाम सुनकर सबका दिल बाग-बाग हो जाता है, वह चाहे हिंदू हो या मुसलमान। भगवान कृष्ण कहते हैं—हमारा भक्त जहां है, हम वहीं हैं।

सुबह की ठंडी हवा, प्रभाती खिलाखिला रही थी। अहमदपुर से भोर की अजान, और कुसुमपुर से प्रभाती भजन आ रहे हैं।

विदेशी राह पूछकर चल दिए। रहीम ने रामू को छाती से लगाकर पूछा, "यार हमारे बेटे लड़ मरे! खुदा चाहते हैं, हम सदा दुश्मन बन जाएं?"

रामू ने हंसकर कहा, "पर ये दोनों तो गले मिले पड़े हैं। भगवान का इशारा है, हम फिर से पहचानें एक दूसरे को, छल-कपट, स्वार्थ राजनीति में नहीं। बलि देकर..."

दोनों हाथ पकड़ नदी पर चले, रोज की तरह, नहाने, सदा की आदत में।

धर्मक्षेत्र

फागुनी सुदी तेरस। सिंदूरा खुल रहा है। सुबह-सुबह कुशभद्रा नदी के किनारे अमराई में कहीं कोयल कूक रही है।

रामाप्रधान का पोता, नवघन का बेटा श्यामघन धीरे-धीरे अनगना नदी की धार में उतरा, आठ वर्ष बाद डाक्टर बन पहली बार गांव लौटा है। आज सुबह मन अचानक खुशी में भर गया। खुशी कुछ अधिक ही थी। हर तरफ सुंदर दिखे। पिछवाड़े में खड़े पोखर और सुकरा की मां के सूखे पत्तों का ढेर भी। इस आनंद में अजान वेदना मिल गई है। पर क्यों। इसके तरह-तरह के रूप देख बचपन से मुग्ध होते रहे हैं। वह इनकी सखा और पथ प्रदर्शक भी थी। अर्से बाद आज उनकी पीड़ा और आनंद और तीव्र हो उठे।

पंद्रह साल पहले उस पार वाले गांव अहमदपुर के मुसलमान, इधर कुसुपुर वाले हिंदुओं में होली पर दंगा हो गया। उनके पिता नवघन तथा रहीम दादा का लड़का अब्दुल एक-दूसरे को मार इस बालू में गलबहियां डाल सदा के लिए सो गए थे। उस दंगे का कारण खुद श्यामघन ही थे। आठ वर्ष के थे तब। रहीम दादा की दाढ़ी में अबीर पोत दी, बस, दोनों गांवों में मार-काट मच गई। जबकि प्रधान और खलीफा वंश में प्रेम पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा था। अब भी है, वैसे गांव वालों के दबाव से प्रकट नहीं हो पाता। वह ऐसी नई और अजब कसौटी पर उतरेगा, किसने जाना था।

श्यामघन पानी में घुसे, तभी देखा कि धार से एक नवयुवती तेजी से उठकर ऊपर जा रही है। अचानक श्यामघन ने देखा—और चौंककर थम गए। सब उलट-पुलट हो गया। दोनों अनजाने थे। विशाल बरगद के नीचे होने की तरह, कई बातें रह गईं।

श्यामघन को देख युवती के चेहरे पर मानो अबीर की मूठ पड़ गई। विस्मय से देखती रही। जैसे दो नील कुंई खिले हों! तपाए कंचन जैसा रंग। घने घुंघराले बाल, चेहरे को ढांपे—मानो कुशभद्रा का बहता नील स्रोत सुनहली बालू पर बहता जा रहा हो, छोटी-बड़ी लहरें ऊपर थिरक रही हों। भींगे कपड़ों में पुष्ट नितंब, घनवक्ष

और पुष्ट जांघों की गोलाई श्यामघन की रक्त-शिराओं को सुलगा गई। जिस आनंद में पलाश जल रहा है, वही आग उसकी नस-नस को दहका गई। कभी तो ऐसा रूप नहीं देखा। देखा हो तो भी समझ नहीं पाया। मानो राधा ने यमुना में नहाकर श्याम को देख लिया और तेजी से घर लौट रही है।

युवती की देह में भी समान आग लग गई थी! अपांग निगाह से श्यामघन की ओर देखा, कुछ क्षण जड़ बनी रही। श्यामघन की सुंदर, पुष्ट देह। उदास निगाहें देखा तो लगा इनके लिए ही तो वह अब तक बैठी रही। वरना जब से होश सम्हाला, तब से कभी नदी में नहाने नहीं आई। आज दादाजी को मनाकर इजाजत लेकर क्यों आती? इन्हें देखते ही दादाजी का भजन क्यों याद आ रहा है—बलमा मोकू चुनरिया लाल रंग दे। मगर मुंह से घबराहट में निकला 'हाय अल्ला!' डर श्यामघन से न था, पल भर में जो उथल-पुथल मच गई उसके लिए था। मन अजीब-सी खुशी में भर गया। मगर देह तो सिहर उठी। 'हाय अल्ला' में खुशी थी, डर भी था।

श्यामघन चौंक गया। ये तो अब्दुल काका वाली हुस्न बानो हैं! बचपन में जब ये डूब रही थी—कुशभद्रा के पानी में, अपनी जान की बाजी लगाकर बचा लिया था। कुशभद्रा खींच नहीं रही थी, बस खेल रही थी, श्यामघन ने आंखें तरेरकर नदी की ओर देखा। लगा वह खिलखिला कर हंस रही है। पानी पर थप्पड़ मार श्यामघन ने मन ही मन कहा—दुष्ट! ये क्या किया?—श्यामघन के चेहरे पर भय, आनंद, विस्मय, हताशा खिल गई। मुंह से निकला, "हे प्रभु! यह क्या किया राधावल्लभ!"

प्रभु का नाम सुन हुस्न चौंक गई। वह जानती है प्रधान वंश वाले बात-बात में राधावल्लभ का नाम लेते हैं। तो यह श्यामघन है! मुझे डूबते से बचाया था। सोचते ही पुलक से भर गई। भय से अचेत-सी हो गई। किसी तरह अपने को सम्हाला, मगर मुंह से निकला, "हाय अल्ला, मैं अब क्या करूं?"

दोनों समझ गए। प्रेम है। मगर परिणाम के बारे में सोचकर दोनों सहम गए। अलग धर्म हैं, इनमें सदियों से ग्लानि, अविश्वास, शत्रुता है, और अंत में भारत विभाजन। फिर भी शत्रुता गई नहीं। बात-बात पर मार-पीट। वीभत्स कांड में डूब जाएं। कुछ दिनों पहले मस्जिद के आगे बाजा बजाने को लेकर कितनी बार मार काट हो चुकी है। निरीह लोगों के घर जलकर राख बने हैं! इस बार कुसुपुरिया दोल पूर्णिमा के दिन अहमदपुर मस्जिद के आगे बाजा बजाकर जाने का मसौदा बना रहे हैं। सुराग पाकर अहमदिया भी तैयार होने लगे। गोविन्दपुर-कुसुपुर की मारपीट से तीस बरस से राधावल्लभ का गोविन्दपुर जाना बंद है। दोनों गांवों में कलह के कारण ही अकेला कोई मिल जाए तो पिटाई कर देते हैं। सैकड़ों फौजदारी मुकदमे हो चुके हैं। इस बार दोनों गांवों ने फैसला किया है—राधावल्लभ गोविन्दपुर जाएंगे, मगर अहमदपुर के बीच से। बड़े-बूढ़ों ने भी समझाया—ठाकुरजी पहले जैसे

जाते, वैसे ही जाएंगे। आपसी भेद भूल एकता लाने की मान ली।

कुसुपुर के हिंदुओं में एकता और अभेदभाव लौट आया और राधावल्लभ ने श्यामघन व हुस्नबाबू में कूट लगा दिया। एक दूसरे का परिचय पाने से पहले ही वे प्रेम में पड़ गए। मगर यह प्रेम दो गांवों में ही नहीं, सारे देश में आग लगा देगा। लोग यों ताक में हैं, यहां की बात उस गांव में पहुंच जाती है। छुपी न रहे।

हुस्न ने फिर कहा, 'हाय अल्ला!'

श्यामघन के मुंह से निकल पड़ा, 'राधावल्लभ, ये क्या किया?'

हुस्न दौड़ी-सी जाने लगी, घर की ओर। मगर मन तो श्यामघन की ओर जा रहा था। लाचारी में चारों ओर देखा। फिर दौड़ने लगी। श्यामघन पानी में खड़ा देखता रहा हुस्न की ओर। एक आवाज दी, 'हुस्न!' आंसू टप-टप नदी में झरने लगे। कुशभद्रा फिर खिलखिला उठी।

हुस्न के चले जाने के बाद श्यामघन को होश आया। आगा-पीछा सोचने लगा। स्वगत कहने लगा—फालतू का रोमांटिसिज्म है। कुशभद्रा को जीवित मान बात कहना, राधावल्लभ को जीवित मान हर बात के लिए दायी बनाना, आनंद पाना-कष्ट पाना—सब झूठ है, हास्यास्पद है। इन पर कोई कार्य निर्भर नहीं करता। करना भी नहीं चाहिए। मुझे वैज्ञानिक की तरह सोचना चाहिए। मैं जिसे प्रेम करता हूं वह केवल लालसा, मांसल कामना भर है। हुस्न की देह ने आकृष्ट किया है। इस लालसा में क्या बह जाना चाहिए? यह मुसलमान, मैं हिंदू हूं। उससे ब्याह करूं, समाज के अनुशासन को छोड़ दूं, तो भी जीवन जहर में भर जाएगा। उनकी रीति-नीति, चाल-चलन अलग हैं, उल्टे हैं। फिर हिंदू मुस्लिम झमेले में प्रेम से रह पाएंगे? पहले सोचा यह आकर्पण लालसा से है या प्रेम से? तब कोई बात। ज्ञानी के मन को भी इंद्रियां डिगा देती हैं। विरोध में कई तर्क आए, मगर एक सवाल बार-बार आता रहा—तुम इसके खिलाफ सोच रहे हो, उसी से स्पष्ट है कि यह यौन नहीं है, साथ में आदिम और मूल संवेदना और आनंद का ज्वर फैला है।

सारे विश्व में यही वेदना-आनंद थिर रूप में बिखर रहा है। वह असीम पीड़ा जब ससीम व्यक्त होती है। तरह-तरह की घटनाएं होती हैं। यह वैज्ञानिकों का चरम सिद्धांत है या फालतू झूठा रोमांटिसिज्म है—कौन जाने। भुवन में यह कैसी आकुलता है? टालस्टाय ने कहा था—माध्याकर्षण के कारण फल पेड़ से गिरता है, अथवा पेड़ तले खड़े बच्चे द्वारा की गई प्रार्थना के कारण, या दोनों कारण हो सकते हैं। क्या पता घटनाएं क्यों होती हैं? जो हो, जब जो घटना होती है, वह एक विशाल प्रवाह में बदल जाती है। श्यामघन व हुस्न उस स्रोत में बह चले। साथ में दोनों गांवों के हिंदू-मुसलमान कई तरह से बह चले।

हुस्न लड़खड़ाती हुई घर में पछाड़ खाकर गिर पड़ी। रहीम की बीवी जेबुन्निसा आंगन लीप रही थी। पोती को यों गिरते देखा—चीख पड़ी—अरे मियां, जल्दी आ रे! अरे हुस्न को क्या हो गया? हाय मेरे अल्ला! मैं मना करती थी नदी जाने को। अरे कुसुपुरी हिंदू ने कुछ कहिस तुझे?

रहीम बाड़ छोड़ दौड़े आए। हुस्न को यों देख अवाक रह गए। जेबुन्निसा ने जोर की आवाज लगाई, "अरे उल्लू के माफिक क्यों खड़े हो? कुछ तो करो। हाय खुदा, अरे श्यामघन आया है...डाकदर बन के, उसे बुलाओ जल्दी..."

पत्नी की बात से होश आ गया। माथे पर गमछा बांधकर कहा, "अभी जाता हूं, तुम माथे पै पानी डालो।" कुसुपुर वाले श्यामघन और मित्र रामू प्रधान को बुला लाने के लिए रहीम दौड़ा। मगर उन्हें दूर नहीं जाना पड़ा। श्यामघन जड़ बने बीच नदी में वैसे खड़े थे। उन्हें देख रहीम ने सारी बातें संक्षेप में बताई। हाथ पकड़ खींचने लगे। श्यामघन कुछ समझ नहीं पाए। बस इतना समझे कि हुस्न बेहोश होकर गिर पड़ी है। कुछ क्षण रहीम दादा को टिमटिमाते देखते रहे। मन ही मन सोचा, "राधावल्लभ! यह क्या किया? घटनाओं के प्रवाह में कुछ सोच ही नहीं पा रहा था।"

अधीर हो रहीम ने कहा, "बेटे! यों क्या देखते हो, जल्दी चलो..."

विह्वल हो श्यामघन ने कहा, "दादा, मैं...हुस्न...ना...ना।"

रहीम ने ऊंचे स्वर में कहा, "ये शरम की घड़ी नहीं। हुस्न तो तेरी बहन है। तू चल..."

श्यामघन ने गहरी सांस लेकर कहा, "मेडीसन बाक्स और स्टेथो ले आना तुम जाकर। मैं ऐसे ही कपड़ों में चल रहा हूं।"

रहीम दौड़ा कुसुपुर। श्यामघन ने रहीम के घर पहुंचकर आवाज दी।

जेबुन्निसा ने रोते-रोते कहा, "अरे श्याम आइस! बेटे...आ...ओ जुग-जुग जीओ...अंदर आओ..."

अंदर पहुंचकर अपूर्व दृश्य देखा। हुस्न सुंदर सफेद साड़ी पहने, माथे पर काली चुन्नी डाल रखी है, पश्चिम को मुंह कर दोनों हथेली ऊपर उठाकर फतिहा पढ़ रही है—

अज्हो बिल्हे मिंश शैतानी र रहीम
विस्मिल्लाहि र रहमनि र रहीम...

आंखों से दरद के आंसू झर रहे हैं। हुस्न कह रही है—मुझे शैतान से बचाओ! अल्लाह! तेरे नाम से हर काम शुरू करती हूं!

मगर फातिहा के संग एक गीत घुल मिल जाता है—

मोरे अंगना में आए घनश्याम!
मैं हो गई बावरिया।

श्यामघन का मन कर रहा था वैसे ही नमाज पढ़े।

रहीम व रामू तब तक पहुंच चुके थे। रामू चचा के कदमों की आहट पर हुस्न चौंक उठी, नजर उठाकर देखा। सम्हल न सकी, वहीं बैठ गई। प्रिय इतने पास हैं! आंसू बह चले।

जेबुन्निसा फिर रो पड़ी। रामू प्रधान ने हंसकर कहा, "भौजी, हुस्न को कुछ न हुआ।" जेबुन्निसा ने कहा, "नहीं जी, कहती थी नहाते समय अब्दुल ने पुकारा है।"

रहीम आश्चर्य में देखते रहे। रामू ने गहरी सांस लेकर कहा, "ये कुछ नहीं है। हम बाहर चलते हैं। इसे गरम दूध पिलाओ।"

श्यामघन को घर जाने को कहा। रामू ने रहीम का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "समझे, इशारा? ताज्जुब है..."

रहीम ने अकुलाकर पूछा, "यह क्या माजरा है? सच बोल, ये बचेगी तो?"

रामू प्रधान कई बातें सोच खुशी से अधीर हो उठे। एकांत में ले जाकर कहने लगे—ये दोनों प्रेम में पड़ गईस। दोनों में सारे लक्षण दिख रहे हैं, स्तंभित स्वेद रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और मूर्छा।"

रहीम ने आंख फाड़ गाल पर हाथ रख कहा, "तोबा-तोबा, स्साले ये क्या तमाशा कर दिया? यार अब इलाज क्या है इस मर्ज का? मां-बाप तो मार-काटकर मरे हैं। इधर ये दोनों...सिरातुल ललीन अन अमत अलैहिम...खुदा तुम्हीं रास्ता बताओ!"

रामू प्रधान ने रहीम के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "हां यार, उनके सिवा कौन है? उनका क्या मकसद है, वे ही जाने...भ्रामयन सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया...सब उनकी लीला।

दोनों चुपचाप सिर नीचा किए चल पड़े। जेबुन्निसा ने पानी लाकर हुस्न के मुंह पर छींटा। हुस्न ने धीरे-धीरे आंखे खोलीं। मानो किसी को तलाश रही हो। लाचारी में। फिर दादी को बांहों में भर फफक उठी, "अम्मीजान मैं मर गई।" फिर गंभीर होकर कहा, "नहीं...तेरा कुछ नहीं हुआ। अल्ला सब ठीक करेंगे।" फिर फतिहा पढ़ने लगी—

अलहिमदु लिल्लाहे रब दिल अलमीन
आर रहमानिया रहीम मालिके योमिद दीन।

हे अल्ला, तुम दया के सागर, मैं तेरी आराधना करती हूं, तेरी मदद मांगती हूं...

श्यामघन वैसे ही गीले कपड़ों में राधावल्लभ मंदिर चला। ठाकुरजी गुलाल के लिए विराजमान हो चुके थे। होली गा रहे थे—

नव वृंदावने नव सागर त्रिरंग

बोलन्ति सभिंक अंग पीरतिर रंग।

श्यामघन नास्तिक है। पर आज सीधे राधावल्लभ की ओर मुंह कर पूछा, "ये क्या कर रहे हैं, प्रभु! क्या कैफियत है? तो मैं मुसलमान बनूंगा?" उन्हें लगा—राधावल्लभ कुछ मुस्करा रहे हैं। कैसी मीठी है वह मुस्कान, सारे धर्म, रीति, नीति, मान-गुमान, अहंकार उसके आगे छोटे पड़ रहे हैं।

उस दिन आधी रात को कुशभद्रा की ढलान पर रामू प्रधान के घर पर एक दीप जला। कुछ समय बाद उस ढलान पर रहीम के घर के पास एक और दीप जला। रामघन को रोमांच हो आया। यह कोई पहेली है या सच है? सोचा था इस नन्हें उजाले को देखकर उस पार घर के बाहर होगी तो देखेगी। कुछ इशारा मिल जाएगा। मगर वह तो अद्‌भुत है! उसने आरती की तर्ज पर दीपक हिलाया। उधर भी वैसे ही दीपक हिला।

श्यामघन की आवाज रुंध गई। दीपक रख उस पार दौड़ पड़ा। दौड़ते हुए सोचता रहा—कैसा आश्चर्य है! पृथ्वी अपने सागर, नदी, नाले, पेड़-पौधे सब लेकर महाशून्य में घूम रही है। वह इस घटना का जरा-सा अंश है। उस घटना के बीच मानव समाज में कितनी बातें घट चुकी हैं। कितनी सामाजिक बातें हो गईं। अगणित व्यक्तिगत बातें हो गईं। सारे विश्व में जो घटनाएं हो रही हैं, उनसे इस घटना का कोई संबंध नहीं?

कुशभद्रा की पतली धारा पारकर उसने सोचा, लौट चलें। मैं कमजोर ठहरा, घटना प्रवाह में बह रहा हूं। अपने समाज या धर्म के प्रति ध्यान नहीं है!

"जाओ बेटे! इसे दिल की कमजोरी न समझो, राधा तड़प रही है..."

श्यामघन चौंक गया। पास में कोई फकीर सोया था। वह देख ही नहीं पाया। फकीर उठकर गा रहा था—

क्या करूं सजनी आए न श्याम
तड़पत बीते मोरी उन बिन रतियां...

"जाओ, मैंने सब देखा...सब समझ लिया। समाज-धरम यहां सब झूठा है..."

श्यामघन स्तंभित थे। कहां-कहां से घटनाएं आकर मिल रही हैं। कोई कूल किनारा न मिले। वे फिर दौड़ने लगे। कुशभद्रा के उस पार पहुंचे, कुशभद्रा की ढलान पर हुस्न उतर रही थी। श्यामघन ने हुस्न का हाथ थाम लिया, "पहले तू ये बता कि कैसे जाना कि दीया मैंने जलाया है?"

हुस्न ने सर नीचा कर लिया, "पता नहीं क्यों, लगा कि तुम आज रात आओगे। किसी ने बता दिया। अपनी खिड़की से देखती रही, तुम्हारे घर की ओर, देखा तो...सब समझ गई..."

"ताज्जुब है, हुस्न, समझ नहीं पाता कि क्या हो रहा है...क्यों हो रहा है।"

"रामू दादा ने मेरे दादा को कहा था—साधारण आदमी अपनी इंद्रियों पर

निर्भर रह वर्षों में, जीवन दर जीवन जो ज्ञान पाता है, कई अवस्थाओं में चोट खा जो पाता है; प्रेम में पड़कर पल भर में सीख जाता है! इतनी घटनाओं की जरूरत नहीं होती। मैंने तो बस सुना था, तुम प्रेम में पड़ सब समझ रहे हो। दोनों एक-दूजे की देह को ही देखते रहते तो मिलने के कितने कायदे करने पड़ते...मगर देखो किसी ने किसी से कुछ न कहा...सब जान गए हम..."

"मगर ये क्या हो गया? ये प्रेम दोनों को जलाकर खाक बना देगा, हुस्न, हमें ही नहीं, दोनों गांवों को। कहीं सारे देश में आग न लग जाए, कौन जाने?"

"तुम मेरी देह को चाहते हो, यह बात इतने में ही रहे।"

"देह लालसा मुझमें नहीं, यह तो कह न सकूंगा।"

"हो तो हर्ज क्या है? गंगा में कितना मैला पानी गिरता है। वह भी पवित्र हो जाता है। देह ही तो एक सत्य नहीं, और भी कई सत्य हैं। वरना बचपन में क्यों बचाते मुझे? तुमको देखते ही क्यों..."

"पता नहीं, जो नहीं जान पाता, उस पर कुछ भी कहो सच होगा, और प्रमाण भी जुट जाएंगे..."

"ये बुद्धि की बातें हैं। बुद्धि से सब कुछ समझ सकते हैं? दूसरों को समझने के लिए मन में हलचल हो तो बुद्धि से सब समझना मुश्किल होता है।"

"मगर हुस्न! इसके बाद शादी जरूरी है। शादी के बाद पग-पग पर बेमेल हुआ तो?"

"क्यों?"

"पाकिस्तान बनने के बाद हिंदू-मुसलमानों के बीच अविश्वास बढ़ गया। बात-बात पर मार-काट। ऐसे में हम पूरी तरह एक-दूसरे को चाह सकेंगे? तुम्हारा मन मुसलमान की ओर खिंचेगा। मेरा मन हिंदू की ओर। इसके अलावा..."

हुस्न ने घबराकर बीच में टोका, "क्यों? हमारा मन न्याय की ओर क्यों नहीं जाएगा? मस्जिद के आगे बाजे न बजाने की बात कुरान शरीफ में कहीं नहीं। हमारे यहां यह बात क्यों है, सब जानते हैं। अतः कानून ने कहा, मन ने कहा, रास्ते पर बाजा बजाकर जाने का अधिकार सबको है, तो फिर मैं मुसलमान हूं, क्या हुआ, उसे क्यों न मानूं? हिंदू यदि मुसलमान का अपमान करने हेतु मस्जिद के आगे ढोल बजाते हैं, तो तुम उन्हें मना क्यों नहीं करोगे?"

श्यामघन अवाक हो हुस्न को देखता रह गया।

"मैं मूर्ख हूं, इतनी बात कैसे जान सकी?" हुस्न बोली।

"तुम तो मेरे मन की बात बोल गई, इस पर ताज्जुब है।"

"ये तो मैंने दादा-परदादा से सुना है। वे जब हमारे घर में शास्त्र चर्चा करते, मैं गौर से सुनती। कुछ-कुछ समझती। पर आज सब साफ है। सब धर्म एक है, आदमी-आदमी में फर्क हमारे डर से निकला है। मगर सदा प्रेम की जय होती रही

है। आज तो श्रीकृष्ण को हृदय से समझ पा रही हूं। प्रेमी कैसे होते हैं! आज तक समझ ही न पाई..."

"हां, हुस्न! अब मैं भी समझ रहा हूं। अल्लाह मेरे हैं। सचमुच, इस धरती का इतिहास घृणा और भय से पैदा हुआ। हत्या का इतिहास नहीं, प्रेम से उत्पन्न एकता का इतिहास। युद्धखोरों ने मानवता नहीं बनाई, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य, जरथुस्त्र जैसे प्रेमियों ने बनाई है। यह बात स्पष्ट ही नहीं हो रही। समझकर भी भावना में भर रहा है, यह भावना सदा सदा तो नहीं रहेगी। विभेदक उसे गिराएगा; अहंकार, स्पर्द्धा भरेगा। याद करा देंगे जगन्नाथ को कि मुसलमानों ने चमड़े के रस्से से बांधकर घसीटा है।...तब?"

"जगन्नाथ क्या सिर्फ तुम्हारे हैं? ये सब असमय का काम है। हिंदू-मुसलमान का नहीं। हिंदुओं में बस्ती में झगड़ा होता है, दुर्गा की मूर्ति तोड़ देते हैं, वह भी सभ्यता है। जिन्होंने यह किया, वे गए। पर जगन्नाथ की भक्ति वैसे ही है। आदमी डिगा नहीं।"

"प्रेम महान है। दुनिया में सब भले हैं। सबके पांवों में पड़ने को मन करता है। हमारे यहां भय, हिंसा न होता तो इस विविधता में आदमी कितना खुश रहता!!"

"सब भले हैं! जड़ में भलाई न होती तो मानवता कब की खत्म हो गई होती।"

"पर जानती हो हुस्न! परसों फागुन पूर्णिमा है। दोनों गांवों में कलह लगाने की सारी व्यवस्था कर ली गई है।"

"ठीक है, तो इसे बंद करने में हम भी पीछे नहीं रहेंगे। दोनों हाथ पकड़ उनके बीच खड़े होंगे...।"

"जरूर..."

"जरूर! मैं तुझे साहस देता हूं और तुम मुझे!"

"हुस्न! इतना ज्ञान कहां पा गई?"

"बताऊं..."

अचानक केवड़े के झुरमुट से सुनाई पड़ा, "प्रेम में...बाबा...प्रेम में..."

श्यामघन व हुस्न दोनों चौंककर भाग छूटे। मगर केवड़े के झुरमुट से रामू प्रधान तथा रहीम ने हाथ से रोककर हंसते हुए कहा, "सोचा था हम कुछ नहीं जानते..."

रामू प्रधान ने श्यामघन की ओर देखकर कहा, "इस हुस्न ने इतनी बातें जान लीं? तेरे प्रेम में पड़कर! घोर जंगल में एक गज था। मुनियों के घर-बार तोड़ देता। उन्हें खूब हैरान करता। मुनि सदा भगवान की चर्चा करते। वो उसके कानों में पड़ती। एक दिन कुंभीर ने चालाकी कर गज को पानी में खींचा। आतंक में भर वह चीखा।

शरीर ज्ञान उपुजिला। पुर्वर हेतु सुमरिला॥
गज जे विचारई मने। जे काले थिलि घोर बने॥
मुहिं मारई बोलि हरि। रुण्ड हुअंति तपचारी॥
मुनि हुअंति कुहाकोहि। आतंक काले भावग्राही॥

आतंक समय में सारी बातें याद आ गई। आतंक और प्रेम में पड़ने पर कुल कुंडलिनी जागती है। बुद्धि खुलती है।

रहीम ने कहा, "यार! हम जो बोलें, ये उसे काम में लगाते हैं। फागुन पूर्णिमा के दिन इन लोगों की सादी करा दें। राजी?"

रामू प्रधान ने रहीम का हाथ पकड़कर कहा, "राजी! फिर कुरुक्षेत्र के लिए हम तैयार होंगे। अल्ला और राधावल्लभ इनका भला करें!"

श्यामघन और हुस्न फफक उठे।

स्मृति रत्नाकर

माघ माह की ठंडी-ठंडी भोर। आज रविवार है। छह दिन की हाड़ तोड़ मेहनत के बाद आज विश्राम। उत्तरा पवन सुबह से ही हिमालय की बरफ बहाकर ला रहा है।

वामन की बैठक ने मानो उस हवा को भी हराया है। वामन नित्यकर्म समाप्त कर अलस में भरे गद्दीदार कुर्सी पर कॉफी की चुस्की ले रहे हैं। प्याले से चुस्की लेकर महंगी चुरट सुलगाई। मुंह फुलाकर धुंआ को कुंडली बना ऊपर की ओर छोड़ने लगे। घर का दरवाजा बंद था, पर बिजली के उजाले में कुंडली साफ दिख जाती है। कुंडली मुंह से एक स्रोत में निकलती, ऊपर उठती, फिर बच्चों की तरह इधर-उधर बिखर जाती। कभी उलटती, कभी नीचे गिरती, फिर नवजन्म पाती। अचानक कुंडली में हलचल भर गई। मानो भय से सिहर इधर-उधर भागने लगी। पूरा घर पतली धुंआ में भर गया।

वामन को लगा कि अब उनका यौवन बीत गया, अधेड़ उमर हो रही है। ओह...देखते-देखते पैंतालीस पार कर गए। ज्यादा जोर दिया तो पंद्रह-बीस बरस! आतंक में भरकर सोचने लगे—मेरे बाद इस सुंदर दुनिया में कितनी नई-नई बातें होंगी। मजे होंगे। मैं वो सब देख न पाऊं। उनका उपभोग न कर पाऊं। वामन गहरी सांस लेकर आईने के सामने खड़े हो गए। सारी बत्तियां जला दीं। आईने की ओर झुककर कान के पास के बाल उठाकर देखने लगे। एक सफेद बाल देख और भी गहरी सांस छोड़ी। मन ही मन गुनगुना उठे—

मरिते चाहिना आमि सुंदर भुवने

मैंने कुछ भी भोग नहीं किया।...बचपन और यौवन तो गरीबी में कटा, पढ़ाई और चाकरी में उन्नति के लिए मेहनत की। सिर्फ चार-पांच साल—चैन मिला। वामन एक-एक कर सफेद बाल उखाड़ने लगे, कुर्सी पर बैठे धुआं की ओर देखते रहे। धुआं का कोई आकार नहीं रहा। पतला धुआं मानो मुक्ति के लिए व्याकुल होकर घर के द्वार-झरोखे से टकरा रहा है। वामन ने उठकर खिड़की खोल दी। सारा धुआं मानो मुक्ति के आनंद में उसी राह से निकल गया।

कुर्सी पर बैठ फिर पीने लगे। अब जीवन को खूब गहराई से भोग करना होगा। उठकर जेब से चाबी निकाल आलमारी से अच्छी विदेश शराब कॉफी के प्याले में उड़ेल पीने लगे, "सुनती हो!"

दरवाजा धकियाकर चपला अंदर आ गई। वामन जब शादी कर रहे थे, मामूली क्लर्क थे। चपला पंद्रह-सोलह की रही होगी। गरीब घर की थी। सौंदर्य में गोरी चमड़ी के सिवा कुछ न था। एकदम दुबली, देहाती चाल चलन। कटक आकर मित्रों के बीच कई बार शर्मिंदा होना पड़ा है। कितना अनुरोध करने पर भी चपला वो रंग ढंग नहीं छोड़ सकी। वामन ने उसे चश्मा दिया, पटली कर साड़ी पहनना सिखाया। खुद परिश्रम कर अंग्रेजी सिखाई। शाम को साथ लेकर काठजोड़ी नदी के किनारे घूमने निकले। मगर सब बेकार हो गया। जितना कहो चपला आंचल को चिबुक तले दबाकर उनके पीछे-पीछे देहातिन-सी अजीब ढंग से चलती है। कभी उनके पास सटकर नहीं चलती। बाद में वामन के पास पैसे हो जाने के साथ चपला के भी चाल-चलन बदले। दिल्ली में तीन साल चाकरी के बाद वामन फिर कटक ट्रांसफर होकर आए, तो उनके मित्र पत्नी को देख चौंक गए—ये ऊंचे वक्ष, गोल बाहु, चंचल नजर, पतले होंठ, बात-बात में अंग्रेजी, ये सब था कहां? मित्रों में आश्चर्य देखकर वामन के मन में गर्व हो रहा था। अब चपला खुद ड्राइव करती है। सिनेमा जाती, पार्टी में जाती है। सिर पर आंचल नहीं। वह आगे चलती और वामन पीछे खुशी में।

चपला सटकर बैठ गई। वामन ने गहरे आलिंगन कर चुंबन देकर कहा, "चपला, आज शाम एक पार्टी करो। दोस्तों को बुलाएं।"

हंसकर बोली, "वही मैं सोच रही थी। वाह, मजे में कटेगी शाम। तुम्हारे सारे दोस्त तो बड़े आदमी बन गए हैं।"

गर्व से बोले, "सब प्रतिष्ठित हैं। वे मेरे घनिष्ठ मित्र हैं!"

फोन उठाकर लगाया—डबल फाइव टू...यस...प्लीज! हेलो! कौन? हेलो...मिसेज सांतरा...गुड मार्निंग...सुजय है? ...नहीं? ...ठीक है...मिसेज महांति आपसे बात करेंगी...

फोन चपला को थमा दिया। चपला ने कहा, "मीना! वाह, तेरे तो दर्शन ही मुश्किल? सुनो, आज शाम तुम्हें और मिस्टर सांतरा को आना है। जरूर आना... धेत्...अच्छा...कहती हूं उन्हें..."

फोन पर सब मित्रों को निमंत्रण दे दिया। मिलकर मीनू बनाया। चपला चली तैयार करने। वामन ने फिर चुरुट लगाया, मुंह लंबाकर कुंडली बना धुंआ छोड़ने लगे। अचानक रुककर धुंआ नीचे छोड़ा।

"वेहरा हैं?" वाहर से आवाज आई।

वामन ने खीझ में कहा, "कौन?"

"जी...मैं!"

"तुम...कौन?"

"जी...विनय!"

"विनय? कौन? कल आना...।"

"जी मैं वामन का बचपन का मित्र विनय..."

वामन को याद ही नहीं आया कि कौन है विनय! बेमन से दरवाजा खोला, कोई प्रौढ़ खड़े हैं। अधमैली धोती पहने, नुची-मुड़ी साफ कमीज। कान में कुड़की, कंधे पर गमछा है। वामन अचंभे और बेमन से देखते रहे।

वह आनंद में हंसकर कह उठा, "नहीं पहचाना! बचपन की बात, गांव की बात, कुछ याद नहीं भई! शाम को नदी के किनारे ठाकुर पूजा करते। कितने श्लोक तुम्हें सिखाए। याद कर कैसे अजीब लगता है। ठाकुर पूजा के लिए कितना बेताब होता, आजकल है या...वो सब..."

"करूंगा क्या? गांव में पैतृक जमीन है। जजमानी है। खेती कर, ठाकुर पूजा कर गुजारा करता हूं। तुमलोग बड़े हो गए। अच्छा लगता है। कटक में काम था, सोचा बचपन के मित्र से मिलता चलूं। उमर हो गई, पके बेल का क्या भरोसा कब गिरे। मरने में अचंभा नहीं, जीना ही अचंभा है।

वामन की आंखें क्रोध में जल उठी। खुद को मुश्किल से सम्हाला, "हां, हां, मरण का मुझे बहुत डर लगता है।"

विनय ने हंसकर कहा, "नहीं, डर कैसा? मरण हर युग में सबके लिए समान है। उसके लिए क्या डर? सब उसे अर्पण करो, डर नहीं रहेगा। उससे अलग जीवन बिताओगे तो डर लगेगा मरने में।"

वामन को अचानक याद आया।

वामन, यह कोई मित्र नहीं, मृत्युदूत आया है। दरवाजा बंद कर कहा, "ठीक है, दफ्तर का समय हो गया, चलता हूं।"

विनय ने अचंभे में कहा, "अरे रविवार को...।"

"हां वहां कोई रवि नहीं...हर दिन...भई तू जा..."

वामन ने दरवाजा बंद कर देखा, पीछे चपला खड़ी है। फिर उसे उन्माद में उठाकर कुर्सी पर बिठाया!

चपला ने पूछा, "बचपन का दोस्त है"

वामन ने उपेक्षा की, "हां, कहता है। मुझे याद नहीं। चल तैयारी करें, अब।"

"वाह तुम न हो तो...मुझे..." वामन उसे देखते रहे।

शाम को सब यार-दोस्त सपत्नीक पधारे।

हंसी-मजाक खान-पान में घर भर गया। बातों ही बातों में अनंत ने कहा,

"अरे, विनय आया था? वह तेरी बड़ी प्रशंसा कर रहा था। तूने बुलाकर चायपानी दिया। मिसेस से परिचय कराया। यार मैं तो पहचान ही नहीं सका। थोड़ा खीझ उठा। मगर बचपन का दोस्त है, नाश्ते पर बुलाया। मना किया। कहा, "प्रो. कर के यहां खाकर आया है!

वामन ने कहा, "हां यहां आया था। हां भई! बचपन के मित्रों को कोई सहज ही भुला सकता है? मैंने उसे डिनर पर बुलाया, बोला—अनंत ने बहुत जिद की है, शाम को टी पर!"

अनंत ने कहा, "शाम को मेरे घर तो आया था, मगर...हां...हां उसे मैंने बुलाया। बचपन के साथी जो हैं।"

बाबा डहरानंद का विवाह

पुराकाल में मैं, मदन, स्वप्नेश्वर और त्रिलोचन—चार ऋषि नैमिषारण्य (त्रिलोचन ने अपने भवन का नाम नैमिषारण्य क्यों रखा यह तो मनोवैज्ञानिक ही बताएंगे) में थे अच्छे खान-पान की कामना में (इन दोनों की अधिष्ठात्री देवी त्रिलोचन की अर्धांगिनी अन्नपूर्णा हैं—हम अरणा देवी कहते) हर रविवार को सुबह से एक बजे तक आलोचना करते रहते।

एक बार रविवार की सुबह हम ऋषिगण नित्य कर्म शुरू कर उपवेशन कर रहे थे, ऐसे समय में अरणा देवी के विश्वस्त भृत्य, अतः त्रिलोचन के भी प्रभु, महात्मा अग्रश्रवा उपस्थित हुए। उन्होंने घोषणा की कि हमारी भाषा होगी—हे रसविशेष, भावना चतुर, भावुकगण, सुनें, सुनें! गृहाभ्यांतर में माता का आदेश श्रवण करें! सम्मुख में घोर कलिकाल देख हमने व्यथित और चिंतित होकर दीर्घ वाक्यज्ञ शुरू किया है। अतः आपके पास प्रचुर अवकाश है। इस दग्ध कलिकाल में जिह्वा ही हर आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक उत्पाद का कारण है, इसमें संदेह नहीं। भागवत में लिखा है—कलिकाल में बहुकथन ही पांडित्य का लक्षण है, वाचालता ही सत्य की प्रतिपादिका है। अतः क्या उपाय करें कि जिह्वा की क्रिया सफल होगी, उसका उपाय ढूंढे, वरना...

हम ऋषियों की बुद्धि तीक्ष्ण और सूक्ष्म थी, अतः अरणा के उपरांत भृत्य पुंगव अग्रश्रवा, उसकी माता और हम सबकी नित्य भीत्युत्पादन कारिणी अरणादेवी के आदेश की क्या घोषणा करें, यह सोचकर विशेष भयातुर हो गए। अतः घोषणा स्थगन की बात सोचकर हम ऋषिगण घोषणा सुनने के आग्रह का छल कर बैठे और समवेत स्वर में पूछा—वरना? वरना?

महात्मा अग्रश्रवा ने हमारा शब्दतरंग संग्रह कर अपने कर्ण चत्वर को चालित किया, अपने दोनों कानों के पीछे हाथ रखकर पूछा, "क्या कहा?" हम चुप रहे। अवज्ञासूचक भंगिमा में हमें अपनी विराट पीठ दर्शाई।

हताशा में किंकर्तव्य विमूढ़ होकर, कुछ क्षण नीरव रहकर मदन ने त्रिलोचन की ओर क्रूर दृष्टि डाली और कहा, "कौन कहता है कि नारी अबला, कोमल,

दयालु है? कौन कहता।"

हमने वैसा किसी से न कहा, नीरवता ने उस प्रश्न का उत्तर दिया। मदन का क्रोध इससे बढ़ गया। स्वप्नेश्वर ने कहा, "प्रकृति के नियमानुसार जो व्यक्ति भीतर से जितना क्रूर है, उसका बाह्य आवरण उतना ही कोमल है?"

त्रिलोचन ने हकलाकर कहा, "यदि ऐसा है, तो यह प्रकृति का नियम है। इसमें क्षुब्ध होने की क्या बात है?"

मदन ने चीखकर टेबुल पर मुक्का मारा, "चुपकर यार! आदमी की आशा जब सफल नहीं होती, या सफल करने की उसे क्षमता नहीं रहती, तब मानसिक यंत्रणा से उद्धार पाकर शांति पाने के लिए वह विफलता का उचित कारण खोजता है। कारण पाकर शांति पाता है।" मैंने कहा, "आजकल जो महंगाई और टैक्स का जमाना है, उसमें हर रविवार हम ऋषिगण के भोजन-पानी पर पंच मुद्रा व्यय होना कोई बड़ी बात नहीं। अर्थ ही हमारा आचार-विचार नियंत्रित करता है।

मदन ने हाथ हिलाकर कहा, "यह बात तुम्हारे मारंकस ऋषि ने ही नहीं कही, भागवत में भी लिखी है। कलिकाल में धन ही मानव समाज के जन्म, आचार, विचार, गुण आदि का निर्धारक होगा, धर्म-न्याय निरूपण का मूल होगा।

त्रिलोचन को हिम्मत मिल गई। बोला, "सच है भई! राम राज्य कह लो। पुराण में लिखा है–राम के शासन में लोगों के घर में हीरे-मोती-माणिक होते, रास्ते चांदी के बने होते। लोग हाट में सामान लाने टोकरी भर मोती ले जाते। साग खरीदने में टोकरी भर मोती देते–यह रामराज आ गया। हम भी कहेंगे–रुपए टोकरी भर ले, कुछ साग दे। उसमें दो पत्ते निकालना हो तो निकाल ले। इसका कारण कम उत्पादन नहीं। असाधुता है।"

मैंने कहा, "खूब! पहले गलत उपाय से धन जमा करो, फिर उपदेश दो...भाइयो साधु बनो!"

स्वप्नेश्वर ने कहा, "अरे ना ना, सरकार ने जितनी योजना बनाई है। कुछ दिन कष्ट सह लो, अवस्था सुधर जाएगी। लोग कहते हैं कि योजना में जितना खर्च हो रहा है उसका सत्तर प्रतिशत काम में नहीं लगता। मैं कहता हूं–बाकी तीस प्रतिशत तो काम में लगता है, यह क्या कम है?"

मदन ने कहा, "ठीक है। जितने रुपए का काम हुआ, वह हिसाब में है, बाकी रुपए हमारी नैतिक अवनति लाया, उसका हिसाब? मन में तरह-तरह की इच्छा-आकांक्षा जगा रहा है। अंडा खाओ, दूध पीओ। घर में रहो...आदि। आकांक्षा का मेल कर कोई उत्पादन किसी युग में नहीं हो सकता। आकांक्षा सौ, तो उत्पादन हो एक। अतः उत्पादन का फल भोग करेंगे कुछ लोग। चतुर लोग। बाकी, विफल मनोरथ कुछ विकृति पैदा करेंगे, उसका हिसाब कहां? अतः पूरे काल में धर्म-दर्शन से आकांक्षा का संयम करने का प्रयास होता। आजकल तो धर्म, दर्शन भगवान

ने मूल से उड़ा दिए। भागवत में लिखा है—कलिकाल में अनभिज्ञ और असाधु लोग उत्तम लोगों का आसन ग्रहण करेंगे।''

तभी देववाणी सुनाई दी, ''हे ऋषिगण! आप वृथा तर्क से दूर रहें। नारायण की इच्छा है, मनुष्य अपना-अपना पालन स्वयं करे। शासक स्वार्थांध होंगे। पालन कर्म में असाधु और असंयमी होने के कारण हिंसा द्वेष बढ़ेगा, लोग एक दूसरे के विनाश में लगेंगे, इस प्रकार सृष्टि का लोप होगा!!''

हम आनंद में चिल्लाए—वाह डहरानंद पधारो—अबे आ!

बाबा डहरानंद ने आशीर्वाद मुद्रा में हाथ उठाकर प्रवेश किया। उनका वह जटाधारी वेश देख अचंभा हो गया।

मदन ने पूछा, ''बाबा ये क्या हताशा की वाणी सुनाई!''

''वत्स मदनानंद मोदक!'' बाबा ने कहा, ''श्रीमद्भागवत में प्रथम स्कंद पंचदश अध्याय का 21-22 श्लोक देखो!''

स्वप्नेश्वर ने पूछा, ''बाबा, तेजोभ्रष्ट क्यों दिख रहे हैं! किसी बंधु के घर पर बहुत काल निवास किया है, जिसमें बंधु पत्नी ने दुर्व्यहार किया? किसी अगम्या नारी के निकट गमन किया? या किसी गम्या नारी को दरिद्र कहकर त्याग किया है? अथवा कर्मक्षेत्र में तुम्हारे समान या तुमसे निकृष्ट व्यक्ति को तुमसे ऊपर उठा दिया गया है? पांच वर्ष कहां रहे?''

बाबा डहरानंद आनंद में हंसकर लोट-पोट हो गए। बोले, ''मैं अत्यंत आनंद में हूं कि तुमने भागवत पढ़ी है। ये प्रश्न प्रथम स्कंद के चतुर्दश अध्याय में युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछे थे। उनका उत्तर ही मेरे पांच वर्ष का विचित्र अनुभव संपन्न इतिहास है।''

तभी महात्मा अग्रश्रवा यथेष्ट जलपान और चाय धारण कर द्वारदेश पर आविर्भूत हुए, कहा, ''ओ...क्या कहा?''

हमने उन महात्मा का हाथ सादर खींचा। नारी संबंधित अपना पूर्व मत परिवर्तन कर लिया।

खाते-खाते बाबा डहरानंद से पूछा, ''मैं पांच वर्ष संधि कर बंबई में था। अद्भुत संधि। उस संधि से मुक्ति के बाद मैंने फिर संन्यास धर्म ग्रहण किया। प्रव्रज्या व्रत पालन कर रहा हूं, जय राधे...जय राधे!''

रसवती बाघिन द्वारा घायल होकर मन का घाव सुखाने हिमालय-फिमालय कुछ काल घूमा, फिर पहुंचा बंबई। वहां मन संसार की ओर खिंचा। अजीब है मन की गति। फिर चाकरी पकड़ी। एक कंपनी में फोरमैन बना। मासिक वेतन दो सौ रुपए। छोटी कंपनी।

काम करने के कुछ दिन बाद मैंने एक अजीब और मुग्धकर दृश्य देखा। कंपनी ट्यूबवेल की खुदाई हो रही थी। दो आदमी दोनों ओर से मशीन पकड़कर ऊपर-नीचे

कर रहे थे। एक महिला बोल रही थी—

चंद्रवदनी हे जवान
खड़ी हुई हे जवान।
पर्वत तोड़ा हे जवान।
चला इंजिन हे जवान।
पाताल में पानी हे जवान।
लाओ खींच हे जवान।

स्त्री को यह काम करते पहली बार देखा। थोड़ा अजीब लगा, मगर इसी से उनकी ओर खिंचा।

बाद में पता चला उसका नाम है कलावती। किसी दमस्कीय छुरी की तरह सुंदर। वैसे ही क्षुद्रकाय, शुभ्रवर्ण, सतेज। इंजिनियरिंग करने के बाद कंट्रैक्टरी कर काफी पैसा कमा चुकी थी। मगर जुए में सब गंवा दिया। दो दिन हुए नौकरी की थी। तब तक कंपनी में नौकरी के साल भर हो हुए थे।

एक दिन रेखा, उस कंपनी की महिला, भाषण दे रही थी—हे नारी! तुम जागो, पुरुष के चरणों में पड़ी न रहो। समान स्तर पर उठो। किसी देश की प्रगति का परिचय महिलाएं ही देती हैं। अन्यत्र वे पुरुषों के समान आने का आंदोलन कर रही हैं। हमारे संविधान ने तो बराबरी का अधिकार दे दिया है। उसे कार्यकारी करना है।"

मदन ने पूछा, "ये क्या? नीचे न सही, ऊपर चलो, समान स्तर पर असुविधा नहीं होगी? जैसे मर्दों के लिए काम नहीं है, बेकारी बढ़ रही है। महिलाएं जुड़ जाएंगी तो समस्या बढ़ेगी नहीं? फिर घर परिवार सब बिगड़ जाएगा। होटल और क्लब ही होगा हमारा विश्राम स्थल, अस्पताल होगा सेवागृह। मेरे विचार में महिलाएं समान स्तर आ जाएं तो काम ठीक से न हो।

"वत्स मदनानंकद मोदक।" डहरानंद ने कहा, "संविधान ने समान अधिकार दिया है। कानून मानेगा कि हमारे चुने हुए प्रतिनिधि जो संविधान बना गए हैं, उससे हमारा भला होगा। अतः उस पर सवाल उठाना संविधान विरोधी अपराध है। महिलाओं के ऊपर या नीचे स्तर पर रहने की बात नहीं उठती। यदि भविष्य में कभी पुरुष देखे कि नारियां ऊपर उठ चुकी हैं, वे नीचे पड़ गए हैं तो संविधान के अनुसार पुरुष समान अधिकार की मांग करेंगे। यह समानता पुरुषों को नारियों के स्तर तक उठाकर ही लाई जा सकेगी, सरकार जो विचार करे। यह बात छोड़ो। क्या कह रहा था, वत्स मदनानंद, तुम बीच में सूक्ष्म तत्व उठाकर रस भंग न करना। क्या कह रहा था?"

मैंने याद करा दिया कलावंतियों ने सभा में भाषण में कहा

"हां", डहरानंद ने फिर शुरू किया, "मैं उनकी ओर आकृष्ट हुआ। मेरे सौभाग्य

से, मैंने उसे सौभाग्य समझा था, कुछ दिन बाद मेरे अधीन वह एसिस्टेंट फोरमेन बनी। प्रोमोशन हुआ और भी सौभाग्य की बात यह कि वह मेरे घर के पास रहने लगी।''

फोरमेन...औरत! मदन चकित हुआ।

स्वप्नेश्वर ने मंतव्य दिया, ''हर क्षेत्र में दो नियम काम करते हैं। समाज सिर्फ परिवर्तनशील हो, वह मिट जाएगा। सिर्फ रूढ़िवादी बने तो वही हाल होगा। विचारवान और दूरदृष्टि संपन्न शासक को ही स्थितियों दोनों में संपन्न शासन करना चाहिए। रेलगाड़ी चल रही है। हर पल परिवर्तन हो रहा है, मगर रेलगाड़ी तो रेलगाड़ी ही बनी रहती है।''

डहरानंद ने धमकाकर कहा, ''वत्स स्वप्नेश्वर! फिर दोष हो गया। बात में रुकावट डाली। हां...फिर...

वह चली जाती साइकल पर, खाकी पैंट व खाकी कमीज पहन व्हिसिल मार-मारकर। सिर के सारे बाल छोटे-छोटे कटे हुए, सामने एकदम साधारण। कैसी फबती थी उस हाल में...''

''अबे डहरे! तेरा दिमाग खराब हो गया। एकदम लफंगा, बंबइया शैतान बन गया है?'' मदन ने घृणा में कहा।

''वत्स मदनानंद!'' डहरा ने ध्यान गंभीर स्वर में कहा, ''मेरी रुचि संविधान और आधुनिक रुचि संपन्नता में है, पर ससुरे, तेरी रुचि संविधान विरोधी और निहायत दकियानूस है। युग चाहता है नारी-पुरुष के समान कार्यक्षेत्र हों। समान कमाएं, समान अधिकार पाएं। यही हो रहा है, यही होगा। कोई रोक नहीं सकता। अतः अब रुचि बदलेगी, यौन आकर्षण बदलेगा, कविता और साहित्य बदलेगा। अन्य देशों में बदल रहा है। वे देश उन्नति की ओर बढ़ रहे हैं। हमारे देश में भी होगा, मेरा हो गया है। समझे वत्स! चुप करो...। फिर...

बायलर का ताप कम होने पर, जब तापमान यंत्र का आगवाला मुंह खोलकर बड़े बेलचे से कोयला डालते समय, या भारी लोहा धकेलते समय मजदूर 'खबरदार' चिल्लाते, तब मैं मुग्ध हो देखना।

कारखाने में फुरसत के समय होटल में बैठकर 'वह दोनों वक्त होटल में खाती—दो चिकन रोस्ट! आह...कितनी सुंदर दिखती! एक दिन मैं उसके पास जा बैठा।

अचानक गुस्से में चिल्लाई—हटो यहां से, ये जगह औरत के लिए है...''

मदन ने जोरदार ताली मारी, ''सब मिल रहा है। अच्छा वह खूब नाटी है?''

''हां'' डहरानंद ने कहा, ''उसे नहीं पहचानते?''

''ना, मगर व्यासदेव पहचानते हैं। वे भागवत में कहते हैं—नारियां खर्वकाय, अधिक भोजन प्रिय, कटुभाषिणी, छलना प्रिय, साहसी होंगी। पुरुष स्त्रैण होंगे। नारी

के सारे भाव प्रेममूलक नहीं, सूरत मूलक होंगे। अच्छा, कारखाने वाला घूसखोरी करता है क्या?"

डहरानंद ने कहा, "अरे वाह! पाकिस्तान को चोरी छुपे एक्सपोर्ट कर विदेश से सोना स्मगल कर तो वह करोड़पति है। वह असली व्यवसाय है। यह कारखाना तो नाम का है। दिखावे का है। बस!"

मदन ने और खुशी में कहा, "बस, बस! एकदम मिल गया। व्यासदेव कह गए हैं—कलि में नीचाशयवणिक क्रय-विक्रय करेंगे। ससुरे सारे लक्षण मिल गए एक जगह। अब भगवान स्वयं अवतीर्ण होंगे—'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'!"

"रख अपने पास, तेरे व्यासदेव, बुद्धदेव!" डहरानंद ने कहा, "यार उनका नाम देकर मुझे गुस्सा न दिला। मैं और नहीं बोलता। धत...अपनी बात बंद करता हूं।"

हम सबने अनुनय-विनय कर कहा, त्रिलोचन ने खड़े हो हाथ जोड़ कहा, "गुरुदेव, बोलें, हम ध्यानपूर्वक वृत्तांत सुन अति आनंदित ही नहीं हैं, हमारे सारे पाप सूर्योदय में कोहरे की तरह दूर हो रहे हैं।" सबने समस्वर में कहा, "नैव च नेवच।" डहरानंद ने प्रसन्न वदन पूछा, "हां, तो क्या कह रहा था?"

मैंने बात का सूत्र थमा दिया। कलावती दो मुर्गे रोस्ट खाती।

"हां, हां" डहरानंद ने फिर शुरू किया, "उसने मुझे उठने को कहा। मैंने कहा—नहीं उठेंगे। यहां बैठने का समान अधिकार है।

इतना कहा कि फिर कहां जाती। कलावंती ने बाक्सिंग में कितनी बार ईनाम पाए थे, मुझे क्या पता? ठीक मेरी नाक पर जोरदार मुक्का दे मारा। सिर चकरा गया। आंखों के आगे तारे चमक गए। चारों ओर अंधेरा छा गया। एक मुक्का उसकी नाक पर चलाया। अद्‌भुत दक्षता और तेजी से सिर हटा लिया। एक और मुक्का दे मारा। मानो लोहे का मुद्‌गर नाक पर रखा हो। दर्द और खून। मैं धम से बैठ गया। तुरत छाती पर एक लात। अब चितपटांग हो गिर पड़ा। बेहोश! एक और लात मारने जा रही थी, कि औरों ने रोक लिया—छोड़िए...छोड़िए। नादान बच्चा है। हाथ झाड़कर युद्धजयी वीर की तरह जाकर अपनी जगह बैठ मुर्गा चबाने लगी।

पहले तो लज्जा लगी और लोग दया से देख रहे थे, पुरुष के प्रति इस अपमान का बदला लो, पर देखा सब मजे से खाने में लगे हैं। मानो कुछ नहीं हुआ। इधर देखती भी नहीं, किसी के मुंह पर अपमान का चिह्न भी नहीं। मैं भी खाने बैठा। कुछ हटकर। मगर खा नहीं सका।

अजीब बात थी। अजीब क्यों, जमाने के अनुसार था। मैं उसकी ओर और भी खिंच गया। पर आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सका। बस लाचार कभी-कभी

उधर निगाह डाल लेता।

ऐसे चलता रहा। तभी चुनाव आ गए। कलावंती नेता थीं। खड़ी हो गई। बाप रे, कितनी दक्षता! एक जीप चला चरखी-सी घूमती, चारों ओर। दिन में बीस-तीस भाषण दे डालती। हम नेताओं को भी पीछे छोड़ दिया। हजारों लोग जमा होते। जयजयकार करते। समझ गए, जीत निश्चित है।

जोरों से जीप चला प्रचार में लगी थी। मैं सामने से आ रहा था। कई दिन से दर्शन नहीं मिले थे। अचानक देख मुग्ध बना खड़ा रह गया। जीप मेरी ओर बढ़ आई। जीने की प्रवृत्ति ने एक ओर धकेला, फिर भी एक पैर पर चक्का चढ़ गया।

गाड़ी इतनी तेज चला रही थी कि कसकर ब्रेक दबाने पर भी दूर जाकर रुकी। उतरकर आकर मुझे उठाया। मेरा सारा दर्द दूर हो गया। हृदय से गहरा आनंद उठकर ऊपर आया। गला रुंध गया। आंखें बह चलीं।

फू-फू पुकारकर फिर जीप चला चल दी। जाते-जाते वह टाटा कर गई।

मगर उसी शाम वो मेरे घर आ गई। मानो बहुत विचलित थी। मुझे देख कहने लगी—मैंने लापरवाही में जीप तुम पर चढ़ा दी। पता है, इस समय तुम मुझे संकट में नहीं डालोगे। चलो शादी करें। राजी हूं, पर एक शर्त है। तुम मेरी किसी स्वाधीनता में बाधा न दोगे और मैं अलग घर में रहूंगी। राजी?

मशीन की तरह कहा—हां, राजी!

मशीन-सा पीछे-पीछे चला। जीप की स्टियरिंग पकड़ मुझे अपने पास बैठने को कहा। बैठ गया। जीप चल पड़ी। पता नहीं किधर चली। मैंने वो उजाड़ इलाका कभी नहीं देखा। एक सूने घर के आगे जाकर रुकी। वह घर में गई। पीछे-पीछे मैं था। साथ में अजीब पोशाक में एक और ने प्रवेश किया। हमें देख मुस्काया और अजीब भाषा में बोलने लगा। कलावंती से कहा—अपने साथी को कसकर थप्पड़ मारो। यही उनकी विवाह पद्धति ठहरी। तुरत कलावंती ने मारा थप्पड़। सम्हाल लिया। कोई दर्द नहीं हुआ। फिर उस अजीब पुरोहित ने कहा—तुम भी अपने साथी को एक थप्पड़ मारो। हाथ बढ़ा नहीं। मैंने मारने को हाथ उठाया, पर मुग्ध हो उसे देखता रहा। कहा—मैं नहीं मार सकूंगा।

पुरोहित ने कहा—खैर, कोई बात नहीं। यह तो विधान भर है। जाओ, आज से दोनों एक सूत्र में बंधे साथी हो। जिसे कुसंस्कारी लोग पति-पत्नी कहते हैं।"

मदन ने ताली मारकर कहा, "व्यासदेव कह गए हैं कि कलि में विवाह एक संधि के अनुसार होगा, अतः..."

"बंद कर ये बकवास यार..." डहरानंद ने धमकाया तो वह चुप हुआ।

"...चुनावों में देर थी। तभी कारखाने में मेरे ऊपर का पद खाली हुआ। मैं कलावंती से सीनियर था, अतः वह पद मुझे मिलना था, पर कलावंती ने दरखास्त

दी—मेरी योग्यता अधिक है। अतः पद मुझे दिया जाए।

वह दरखास्त मैंने पढ़ी। उसने न पढ़ने दी और न उस पर कभी चर्चा की। दफ्तर में ही देखी वह दरखास्त। एक दिन साहस कर कहा—सुना है दरखास्त दी है, उसमें मेरी बुराई लिखी है!

उसने आंखें तरेरकर देखा—खबरदार, मेरा उस पोस्ट पर समान अधिकार है। तुम उसमें बाधा नहीं दे सकते। मैं स्वामित्व स्वीकार नहीं करती। पढ़ी-लिखी नारी हूं, तुम्हारे चरणों में गिरी औरत नहीं।

इस समान अधिकार ने तो घोर द्वंद्व में डाल दिया। यह सच है कि यदि वह कोई मर्द होती, मेरे साथ प्रतियोगिता का पूरा हक था। पर समाज में पत्नी, कार्य में सहकर्मी—दोनों विरोधी भाव हजम नहीं कर पाया। शायद मेरे युगों के संस्कार इन दोनों के साथ टिकने नहीं दे रहे थे। शायद कुछ समय बाद सहज हो जाए। खैर...छोड़ो...वो बात...

कारखाने के जनरल मैनेजर ने विचार कर मेरी स्त्री को मुझसे ऊपर कर दिया। बहुत चोट लगी। काम में मन नहीं लगा। घर में वह अच्छा व्यवहार करती। मगर कारखाने में देर हो जाती—या गलती हो जाती—कसकर डांट देती। एक बार जी एम को रिपोर्ट कर दस दिन का वेतन काट लिया।

सहना मुश्किल था, पीड़ा से मर रहा था। नौकरी छोड़ दी। इधर-उधर बंबई में भटका। उसने कभी खोज-खबर न ली।

चला गया हिमालय। गोपी साधना करने के लिए। साधना पूरी कर सीधा तुम्हारे पास आया।

चाय दो...जय राधे-जय राधे!!!

इच्छापूर्ति

भगवान के कार्यालय में इच्छापूर्ति विभाग है। पहले आता है ग्रह-उपग्रह सृष्टि विभाग।

फिर है जीवनसृष्टि विभाग। हजारों चित्रकार बैठकर तरह-तरह की डिजाइन के चित्र आंक रहे हैं। उस विभाग के कर्ता अनुमोदन के बाद भगवान के पास पेश करते हैं, फाइनल एप्रूवल के लिए।

जीवनसृष्टि विभाग के बाद है जीव-लोप वृद्धि-स्थिति विभाग। यहां भी हजारों देवता बैठकर विचार करते हैं कि किस श्रेणी का कैसे लोप करें, किसकी वृद्धि करें। वे भगवान को बताते हैं।

अंतिम विभाग है इच्छापूर्ति विभाग। इनके सिवा हजारों विभाग-उपविभाग हैं।

दफ्तर के अन्य विभागों की तुलना में इच्छापूर्ति विभाग का महत्व कम है। मगर इस विभाग के कर्मचारी सदा कार्य में लगे रहते हैं, रात दिन खुला रहता है। इसका एक उपविभाग लोगों की इच्छापूर्ति पर विचार करता है। उन्हें हर पल भगवान के आगे पेश करते हैं। भगवान उनका क्रमशः विचार करते हैं। भगवान उन इच्छाओं का सदा अनुमोदन करते हों, ऐसी बात नहीं। कभी किसी इच्छा को कर्मचारी अधिक आंतरिक कह पहले पूरी करने की बात कहें, पर भगवान उसकी जगह दूसरी को पूरी करने का आदेश देते हैं। कभी भगवान आदेश देते हैं—यह इच्छा पूरी करने की क्षमता उस आदमी में है, वही चेष्टा करे। भगवान के दफ्तर से उसे पूरी करने हेतु कोई मदद नहीं मिलेगी। भगवान की बात का मूलमंत्र जान इच्छाओं को क्रमशः सजाने में विभागीय कर्मचारियों को समय लग जाता है। अतः कोई कर्मचारी नया नियुक्त हो तो उस कार्य में गड़बड़ हो जाना स्वाभाविक है।

मनुष्य की इच्छापूर्ति विभाग का पुराना मुख्य कार्यकर्ता रिटायर होने के बाद इस पद पर ऐच्छिक नियुक्ति दी गई है। अंतर्यामी क्षमता भी उन्हें दी गई है।

भगवान अपने विश्व आफिस कमरे में अनंतकुर्सी पर बैठ जीव सृष्टि विभाग की डिजाइनें देख रहे हैं। मनुष्यों ने मलेरिया मच्छरों के खिलाफ अभियान छेड़ दिया, इन मच्छरों के डिजाइन में कुछ बदलाव किया है, उसे जारी करें या नहीं, इस पर

विचार कर रहे हैं। जीव लोप-वृद्धि विभाग के स्थिति सेक्शन के अफसरों का मत है—मच्छर विलोपन का अर्थ है मनुष्यों द्वारा भगवान की पराजय, अतः मच्छर विलोप कतई उचित नहीं। पढ़कर भगवान मुस्काए। भगवान ने मानो सूचना दे दी—यह मेरी ही पराजय ही मेरी जय है। मुख्य कर्ता ने मत दिया कि उक्त श्रेणी के मशक का लोप कर मनुष्य के रक्त शोषण हेतु अन्य जीव का सृजन हो, या फिर वैसे जीव की वृद्धि हो, उन्हें संजीवनी रस अधिक दिया जाए।

तभी दिल्ली पार्लियामेंट में 'डी. डी. टी. एवं खटमल' विषय पर जोरदार वाद विवाद हुआ, जो भगवान के कानों में पड़ा। भगवान ने मुस्कराकर फाइल रख दी। मनुष्यों के अंतिम फैसले तक प्रतीक्षा की जाए। आज तक मनुष्य की वृद्धि कितनी हुई इसकी डिटेल रिपोर्ट मुझे दी जाए।

जीवन सृष्टि व जीव लोप-वृद्धि विभाग वाले अपनी फाइलें समेटकर चले गए, उसके बाद ऐच्छिक फाइलें पेश की गईं। पहले पड़ी दुर्गाचरण की उस दिन की इच्छाएं। ऐच्छिक अंतर्यामी क्षमता के बल से दुर्गाचरण बाबू की उस दिन की इच्छाओं का विवरण दिया गया है :

दुर्गाचरण मनुष्य हैं, मनुष्यों के शासकीय कार्यालय में ऊंचे अफसर हैं। लेखक भी हैं। मलेरिया में पड़े, ठीक हो गए, मगर कमजोर हैं। अब दो अनुलिता (मनुष्यों की गिनती में दो दिन) छुट्टी लेकर घर में आराम कर रहे हैं। अब तो कोई काम न होने पर उनकी इच्छाएं कई गुना बढ़ गईं। कछ हास्यास्पद हैं। उनका उल्लेख नहीं है। जैसे—ऐश्वरिक शक्ति पाकर हवा में उड़ना। भगवान ने कहा—इन ऐच्छिक बातों का उल्लेख नहीं हुआ। कई बार ये हास्यास्पद कारण ही मनुष्य की बुद्धि का विकास करते हैं। पर ऐसी इच्छाएं पूरी करना मनुष्य की क्षमता सूची में रखा है। अतः इसके लिए ऐश्वरी सहायता नहीं दी जाएगी।

अन्य इच्छाएं चिंतक के समयानुसार सजाया है:

दुर्गाचरण सुबह जगे देर से। रात देर तक अपने बारे में सोचते रहे। कैसे बड़े लेखक होंगे, सारी दुनिया सम्मान देगी। सारे पुरस्कार पाएंगे। पृथ्वी पर बड़े-बड़े चिंतक कैसे बने, उनकी चिंतनशैली ने संसार को चमत्कृत किया...आदि। देर रात में वे थककर सो गए देर रात में।

सुबह उठकर ब्रश घिस रहे थे, फिर सोचते रहे। अपने ख्यालों पर मुग्ध हो गए। ब्रश कर संडास में भी उन्हीं पर सोचते रहे। नहाकर नाश्ते पर उन्हीं बातों पर सोचते रहे। आज बड़े खाने की इच्छा हो रही है। छोटे को बड़े लाने भेजा। वह कुछ ही देर में पद्मपत्र पर मोड़कर गरम बड़े ले आया।

बड़े खाकर चिकने हाथ पद्मपत्र पर पोंछे। तभी छात्रावस्था की बात याद आ गई। तब गरीब थे। साथी दीना एक और घर में रहता। दुर्गाचरण सुबह नहा-धोकर दीना के घर चले जाते। एक फेरीवाला दो बड़े उधार दे जाता। एक खाता दीना

और दूसरा दुर्गाचरण। खाकर दोनों पद्यपत्र पर हाथ पोंछ एक-एक गिलास पानी पीकर बैठ जाते। लगता काफी अच्छा खाना खा लिया है।

आज वड़े खाकर दुर्गाचरण को वह स्मृति मन में सिहरा गई। पांच वर्ष से उससे भेंट नहीं। मन में इच्छा हो गई—दीना से भेंट हो जाती।

उज्ज्वल भविष्य की वे वातें अगले क्षण याद आईं, जल्दी से पलंग पर आ गए—उन पर विचार करने।

इसके बाद इतनी इच्छाएं जागीं—उन्हें लिपिबद्ध करना असंभव हो गया। कुछेक को क्रम में सजाया—

पलंग पर लेटकर पहले सोचने लगे—मैं बड़ा नेता बन गया हूं। राजनीतिक ही नहीं, आध्यात्मिक भी। आध्यात्मिकता के बल पर भगवान को प्रत्यक्ष पाया है और भगवान की प्रार्थना कर अपने सारे कार्य उन्हीं से कराते हैं। (भगवान मुस्काए) प्रार्थना के बल पर चीन सेना को भारतीय सीमा से हटाया है।

फिर मन ही मन कहा—शुरू से सोचने भी लगे—मैं एक कर्मचारी हूं, बड़ा लेखक हो गया। सिर्फ ओड़िया में ही नहीं, भारतीय भाषाओं में बड़े-बड़े लेख छप रहे हैं, सब पढ़कर मुग्ध हो रहे हैं। (हालांकि ओड़िया के सिवा किसी भारतीय भाषा का एक अक्षर भी नहीं जानते) जहां जाते हैं, लोग मुझे देख आश्चर्य व मुग्ध हो रहे हैं। रेलगाड़ी में जा रहा हूं, कोई नहीं पहचानता, कुछ युवतियां मेरे लेखों पर चर्चा कर रही हैं। प्रशंसा कर रही हैं। वे मुझे बिल्कुल नहीं पहचानतीं। फिर मैं प्रकट हुआ। ना, यह तो अहंकार होगा...।

विनयी बने रहना होगा। स्वयं जाहिर करूंगा। इसका उपाय न पाकर दूसरी बात सोचने लगे।

तभी पत्नी ने लाकर छोटे बेटे को गोद में बिठा दिया। आप चुपचाप लेटे हैं, ये मुझे खाए जा रहा है। खाना बनाने ही नहीं देता। दुर्गाचरण ने कहा—तेरा खाना पकाना मेरे चिंतन से भी अधिक जरूरी है! कितने उच्च चिंतन जगत में हूं, तुमने सब गड़बड़ कर दिया। ऐसी स्त्री पाकर कोई...! पत्नी बेटे को लेकर तमतमाती चली गई। कहती रही—जब देखो चिंतन...!!

दुर्गाचरण फिर सोचने लगे। नौकरी में काफी उन्नति कर गया हूं—मोटी तनखा पाता हूं। मकान हो गया। यहां सोचने लगे—कहां जमीन लेकर घर बनाऊंगा। पुरानी पैतृक जगह तो छोटी है। वहां बड़ा मकान संभव नहीं। यह जगह छोड़ दूर जाने की इच्छा नहीं। जिनसे ईर्ष्या है, उन्हें बड़ा घर दिखाकर जला न सकेंगे। नक्शा बनाते-बनाते कूल किनारा भुला बैठे। छोड़ें इसे—फिर शुरू से सोचने लगे।

सोचते रहे—बड़ा वैज्ञानिक बन गया। मेरी रिसर्च आइन्स्टाइन को पार कर गई। हिसाब कर समझा दिया—हां भगवान का अस्तित्व है (भगवान मुस्काए) वैसे दुर्गाचरण हिसाब से बहुत दूर हैं। हिसाब देखकर ही बुखार आ जाता है।

...मैं भी तैरकर प्रशांत महासागर पार करूंगा।

...ना-ना ये असंभव बातें सोचकर कोई लाभ नहीं। बस दुनिया का प्रसिद्ध लेखक, बड़ा आध्यात्मिक राजनेता बन चुका हूं। एक साथ सब...मगर इसमें तो भगवान की मदद जरूरी है! उनका अस्तित्व हृदय में सोचे बिना उन्हें पा सकूं। पहले भगवान के प्रति प्रेम उपजाना होगा...अच्छा...भगवान के अस्तित्व पर विश्वास हो या नहीं, वे होते तो क्या मेरे मन में प्रेम नहीं भरते? हे भगवान? बड़ा लेखक या नेता बना दो। मैं राम, दामा, शामा की तरह जिंदगी नहीं चाहता...

भगवान ने पूछा—ऐच्छिक, बेचारे की उम्र क्या है?

—पैंतालीस!

मुस्काकर भगवान ने कहा—बुद्धि परिपक्व नहीं हुई। सिर्फ अपने को बड़ा कर औरों के आगे रखने के लिए मुझे पाना चाहता है। वह इच्छा पूरी करने का उपाय क्षमता में है। खैर! अब वह उसी राह जाए। तुमने रिपोर्ट में उसके प्रति घृणा को छुपाने की चेष्टा की है। ना ना ऐसी रिपोर्ट मुझे कभी न देना। मानता हूं बड़ा बनने के संघर्ष में मानव जाति ध्वंस होगी। यदुवंश ध्वंस होने की तरह। पर इसमें यह होता है? अच्छा तुम किस इच्छा को प्रायरिटी देते हो?

—दुर्गाचरण लेखक होने व नौकरी के प्रोमोशन को।

—क्यों?

—सब बातों में ये दो बार-बार आकर्पित करती हैं। व्याकुल होकर चाहा है। अतः ये दोनों खूब आंतरिक हैं।

भगवान ने मुस्काकर कहा—ज्यादती कर रहे हो। खैर, जल्दी उसके मित्र दीना को कटक भेजो, दुर्गाचरण से उसकी भेंट कराओ। सुनो! मानव जाति की सामूहिक इच्छा और हर आदमी की व्यक्तिगत इच्छा किस स्तर पर आ गई, परस्पर क्या संबंध है, उस बारे में एक पूरी रिपोर्ट दो।

ऐच्छिक आदेश पाकर चले गए।

दुर्गाचरण थम चुके थे। मन में अवसाद भर गया। ऐसी असंभव कल्पना कर खुद घृणा में भर गए। उठकर टहलने निकल पड़े। देखा बाहर दीना जा रहा है! एक दूसरे को देख खुश हो गए।

दुर्गाचरण ने पूछा—किधर?

—फिलहाल भुवनेश्वर से आ रहा हूं। पिताजी ने जरूरी खबर भेज कर बुलवाया है।

—ओ...पांच साल बाद भेंट, क्यों! आज सुबह बड़े खाते-खाते तेरी बात याद आ गई। इधर कुछ साल मैं दूर देश में था। तेरी खबर नहीं मिली। आज सोच रहा था, कैसे भेंट होती—

दोनों ने एक दूसरे को गले लगाया, दुर्गाचरण को याद आ गया—

Lord I know not
What to ask of thee
thou only knowest
what I need.
Thou lovest me
better then I know how to love myself;
Smite me or heal me
depress me or raise me up,
I adore all thy purposes
without knowing them;
I do not know to pray,
pray thyself in me.

(मैं क्या चाहता हूं, नहीं जानता। तुम्हें अच्छी तरह पता है मुझे क्या चाहिए। मैं खुद को जितना जानता हूं, तुम उससे अधिक मुझे चाहते हो। दुःख दो या सुख दो। निंदा दो या प्रशंसा दो, तुम्हारा इसमें क्या उद्देश्य है, नहीं जानता, फिर भी वह उद्देश्य महत है। मैं प्रार्थना करना नहीं जानता। तुम मेरे अंदर रहकर प्रभु, प्रार्थना करो!)

ध्वनि

आदमी में शायद दो मन हैं। एक देहज मन और दूसरा देहातीत मन! देहज मन देह में पड़ा रहता है। धन, जन, मान, क्षमता, सुख, भोग के पीछे दौड़ता है। इसके लिए कितना लोभ, हिंसा, छल, झूठ का सहारा लेता है। तब उसका देहातीत मन उसमें कहीं छुप जाता है, फिर भी बीच-बीच में देह सर्वत्र फैली है। उसी महान शक्ति की ओर खींच लेती है। तब आदमी अपनी इंद्रियों द्वारा परिवेष्ठित छोटी संकीर्ण धारा छोड़ बाहर नजर दौड़ाता है। सब सुंदर दिखते हैं। दूर तक अद्‍भुत दृश्य लगे। "तब मुरली उसका नाम ले, आओ पुकार दे।" वह मुरली स्वर सुनकर "मन होता बेचैन, कहीं न लगता मन"। सदा समान दो पक्षी एक पेड़ पर आश्रय लिए हैं, उनमें एक अजीब स्वाद वाला फल खाता है। दूसरा सिर्फ देखता है। देहातीत मन जिसका अधिक प्रबल हो, असल में नेता वही होता है, सिर्फ दर्शन करता है। असली क्रांतिकारी बुद्ध, ईसा, चैतन्य की तरह।

यह किसी कहानी की विषय वस्तु है? क्यों नहीं होगी? साहित्य सिर्फ देहज-मन में तृप्ति के लिए होता है या देहज मन की तृप्ति के लिए जो साहित्य देता है, वह 'साहित्य' है? आज सुबह भगवान बाबू के मन में जो भाव आए, वे साहित्य की दृष्टि से क्या एक कहानी नहीं?

जाड़ों की एक रमणीय भोर। भगवान बाबू चादर डालकर बाहर निकल पड़े। मन अचानक उदास हो गया। हल्की सूर्य किरणें बिखरी हैं। हरी घास पर ओस कण में सूरज की किरणें प्रतिफलित होकर अजीब भान करा रही हैं। कौवे कांव-कांव कर उड़ जाते हैं। दूर एक चिड़िया बार-बार चीं-चीं में कहती है—कृष्ण कहां-कृष्ण कहां!! व्याकुल स्वर में, मलिन आवाज दे रही है—आलू-बैंगन...। म्युनिसिपैलिटी की माल ढोने वाली गाड़ी करर-कें करर-कें करती जा रही है। एक घोंघा चुपचाप रेंगता जा रहा है।

भगवान बाबू का मन घर में नहीं रहा। अनजाने पांव आगे बढ़ गए। मन वो देखने को खींच रहा है। कई बार ये सब देखा है। पर आज नए रूप में देखने को, सुनने को मन किया।

घूमते-घूमते आकर पहुंचे किंकर के घर के आगे। कोई उद्देश्य नहीं, यह इच्छा है। किंकर बचपन का मित्र है। कई दिन से नहीं मिला। दुनियादारी के जंजाल में पड़ा उलझा रहा। घर से कचहरी। कचहरी से बाजार, फिर घर। इसी घेरे में मन व देह घूमते रहे। कुछ दिन पहले एक बेटा मर गया। अभी तक उस शोक से नहीं उबरे। भगवान उसकी खबर पूछने दरवाजे पर खड़े हुए। किंकर के घर के बाहर कोलाहल हो रहा था। हर शब्द अलग-अलग सुनाई दे रहा था।

अंदर किंकर की पत्नी बैठकर अपने मृत बेटे के गुणों को बिसूर रही थीं। "मुझे छोड़ कहां गया? कैसे जी सकूंगी...मेरे लाल...।" अचानक रोना बंद कर नौकरानी पर बरस पड़ी, "हेमा! कितनी बार कहा है, बर्तन मांजने के बाद साफ पानी से धोया कर। तेरा पांव पकड़कर कहूं क्या?"

हेमा चीखी, "रखती हूं...चीखती क्यों हो?"

फिर दोनों में कलह...।

किंकर की बड़ी बेटी सातवीं में है। ऊंचे स्वर में पाठ याद कर रही है। ग्रीनलैंड के निवासी 'एस्किमों' हैं। ऊ...ऊ...ऊ...ऊ वर्ष भर ठंड सहनी पड़ती।...मां कुना को देखना। चुप करो...शैतान?

किंकर बाबू तीन बरस के बेटे का सिर नीचे कर दीवार पर पांव उठा सबकी निगाह खींचने कहा—चक्र देखो...देखो...

बाहर दरवाजे पर एक मुर्गा और दो मुर्गियां कुरी से दाने चुग रही हैं। बीच-बीच में मुर्गा गर्दन ऊंची कर बांग देता है। चक्रधर...रक्षा कर। उसमें आकाश कांप जाए...स्रष्टा को थर्रा दे!

कोई कुतिया, उसके पीछे पांच कुत्ते। बीच-बीच में कुतिया पूंछ दबाकर मुड़कर सबको देख भौंक उठती है। तभी कुत्तों में झगड़ा शुरू हो जाता है। आपस में काटने दौड़ते हैं। इसी बीच कुतिया भी उन्हें झगड़ते देख भाग छूटी है।

भगवान बाबू की गोद में बच्चा सुबक-सुबककर हांफने लगा है।

एक भिखारी सुबह-सुबह आ जुटा। ऊंचे स्वर में कहता है—मां...धरम करो! दो दाने...दस घर जाना है। इतनी देर करने से होगा? रेड़ीवाला चिल्ला रहा है—गरम समोसे, आलूचप, पकौड़ी...रस्सगुल्ला। दो मामलातकार वकील की ओर जा रहे हैं। एक हाथ हिला दूसरे से कह रहा है, "मिटा दूंगा उसे, भाई नहीं दुश्मन है।"

रेलगाड़ी पुल पार कर रही है। सीटी मार कर गरज रही है।

पास बैठक में तर्क चल रहा है—दुर्नीति का पानी बहाव-सा है। नीचे से ऊपर नहीं जाता, ऊपर से नीचे बहता है। चपरासी चवन्नी घूस ले, तो हाकिम रुपया नहीं लेगा। हाकिम ने सौ रुपए लिए हैं तो चपरासी चवन्नी लेगा। चपरासी घूस लेने का आर्थिक कारण है। पर हजारों रुपए पाकर जो दुर्नीति में डूबे हैं, वे सिर्फ अपराधी मनोवृत्ति के कारण।

किंकर की आवाज आ रही है। गीता पढ़ रहे हैं:

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वास्तथा भूत विशेपसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासस्थम् रषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।
अनेक बाहु दरवक्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम्॥

दूर से आवाज आ रही—अल्लाह लाइलाहा लिल्लिलाह!

भगवान बाबू हर ध्वनि अलग-अलग सुनने लगे। मन में सवाल आया—ये ध्वनियां अलग-अलग हैं? उत्स का संधान करते-करते ऐसे स्तर पर पहुंचे जहां लगा कि हर ध्वनि का उत्स एक है। किसी ध्वनि का अलगाव नहीं रहा। सब घुल-मिल एक अपूर्व शब्द झंकृत होने लगा...धीर उदात्त स्वर में।

भगवान बाबू मुस्काकर शून्य को देख नमस्कार कर फिर चलने लगे।

यह क्या कोई कहानी हुई?

कस्ते पुत्रः

बाजार में दो पैसों का साग खरीदने से लेकर राष्ट्रमंडल तक हर जगह संग्राम। हरेक जीवन के लिए संग्राम कर रहा है। पर कोई-कोई आदमी ऐसा होता है जिनके लिए जीवन मजाक बन जाता है। संग्राम टल जाते हैं। मारने आए तो कहेंगे—मारो मत, ये लो मैं तो मर चुका। हमारे कान्हू बाबू ऐसे ही हैं। वे कचहरी में बच्चे-बूढ़े सबके बाबा हैं। जो नौकरी में आज आया, कुछ ही दिनों में वह कान्हू बाबा का पोता हो जाता है। हंसी मजाक में पीछे न रहे। कान्हू बाबू कुर्सी छोड़ खड़े हों तो पीछे से खींच लेगा, या पीठ पर 'गधा' लिख देगा। इसमें वे बुरा नहीं मानते, आमोद मानते हैं। उनके प्रति किसी में आक्रोश नहीं होता। क्योंकि वे अपनी दक्षता दिखाकर किसी का प्रमोशन नहीं रोकते। नौकरी में चालीस वर्ष हो गए। जहां के तहां हैं। कर्तव्य की उपेक्षा और ढीलेपन के कारण कई बार उनकी वार्षिक वृद्धि रुकी है। कई बार सस्पेंड हुए हैं। रोज गालियां खाते हैं। फिर भी वही ढाक के तीन पात। अपनी हालत सुधारने की कोई चेष्टा नहीं। किसी तरह अस्सी में घर चला लेते हैं। घर यानी पत्नी और एक बेटा। पत्नी को पास रखने की क्षमता कभी हुई नहीं। बेटा पास रहकर पढ़ाई करता है। इस बार मैट्रिक पार कर गया। उसे कहीं नौकरी में लगाया तो रिटायरमेंट लेंगे, यही सोच रखा है।

जबसे नौकरी की तब से बंद गले का कोट और उस पर अधमैली चादर डाल झूलते-झूलते आते हैं। घर से निकल राम-रमी करने में आधा घंटा चला जाता है। फिर रास्ते के सारे मंदिर, देवी-देवताओं को सिर नवाने में दस मिनट। कचहरी पहुंचे, तब तक दिन के बारह बज जाएं। इस बीच हाकिम दो-तीन बार बुला चुके होते। पहुंचकर कचहरी में सांस लेकर कुर्सी पर बैठे, तब तक सामने टेबुल पर लाल पेंसिल से लिखा कागज होता। हेडक्लर्क का आर्डर, पहुंचते ही साहब से मिलो। यह रोज की बात हो गई। कान्हू बाबू वह लेकर अनदेखी कर जाते। चादर से पसीना पोंछते। चादर हिलाकर हवा करते! इसी में ऊंघ जाते। हाकिम का चपरासी या फिर हेडक्लर्क खुद आकर जगाकर कहता—जाइए साहब ने याद किया है।

एक और गहरी सांस लेकर मुंह से पान थूक कोट ठीक करते। धीरे-धीरे साहब के कमरे में आते। वहां आधा घंटा तक निर्विकार भाव से गुस्से में भरी वाणी सुनते, कई कामों की सूची लेकर लौटते रेकार्ड रूम में। रेकार्ड रूम में अंधेरा है। वहां कोई जाता नहीं। ऊंचा कमरा, बड़ी-बड़ी थाक भरी। सारी पुरानी फाइल-कागज यहां हैं। पिछली थाक में सारी फाइलें सरका एक आदमी के सोने लायक जगह बनाई गई। उस पर पड़ा है मैला एक गद्दा। कुछ मोटे रजिस्टर मिलाकर तकिया बनाया है। गालियां हजम करने कान्हू बाबू यहां आकर सो जाते हैं। उनका यह गुप्त शयन शिविर कुछ विश्वस्त के सिवा कोई नहीं जानता। इस बीच चारों ओर खोजा जाता। कोई पोता कहता—किसी काम से उस दफ्तर गए हैं। कोई कहता फाइलें लाने गए हैं। हेडक्लर्क चशमे से खाली कुरसी को देखते। टेबुल पर बंधे कागजों में से एक खींच गुस्से में कुछ लिख देते—चपरासी को आवाज देते—

—जी, हां!

—जाकर साहब को दे आओ! जाओ!

बूढ़ा चपरासी धनु के ऊंघने में बाधा होती। वह ठहरा कान्हू का दोस्त। दोनों एक खोली में पांच रुपए किराए में रहते हैं। शुरू से दोनों कभी पत्नी के साथ कटक में नहीं रह पाए। न कभी छुट्टी लेकर घर गए हैं। साल में दशहरे की छुट्टी में इजाजत लेकर जाते। गांव कटक से दूर है। आने-जाने में ही पांच रुपए चाहिए। एक साथ इतने रुपए जुटा नहीं पाते। पाने पर छुट्टी कौन देगा? आखिरकार कटक में ही पड़े रहते, उस छोटी-सी कोठरी में।

यह है उनकी रोज की जिंदगी। कभी इसमें फर्क नहीं पड़ता। एक बार हाकिम ने खीझकर उन्हें राह पर लाना चाहा—जमाना था जब अंग्रेज शासन था, तब कर्तव्य की उपेक्षा चल जाती थी। पर देश अब तो स्वाधीन हो गया है। हम अब भी काम में ठगेंगे, तो हमीं मरेंगे, आप नहीं समझते क्या? कान्हू बाबू चुपचाप खड़े रहे। उनका स्वभाव ही ऐसा है। गालियां दो, उपदेश दो, सवाल पूछो, सदा चुप! इस चुप्पी पर हाकिम और नाराज होते। कलम टेबुल पर पटककर कहते—ये क्या तरीका है? पूछने पर कोई उत्तर नहीं! हाकिम की ओर तिरछे देख कान्हू बाबू कहते—जी, मैं सब समझता हूं। मगर काम में मन ही नहीं लगता। क्या करूं?

क्यों?

मेरे काम से देश की उन्नति होगी, इससे हमारी उन्नति होगी। मैं सब समझता हूं। मगर, सारा जीवन कट गया, जरा भी सुख न मिला। एक दिन बाल बच्चे पास नहीं रख सका।

हाकिम चुप। कुछ क्षण बाद कहा—ठीक है जाइए।

हाकिम के पिता क्लर्क थे। कितनी मुश्किल से उन्हें पढ़ाया।

कान्हू बाबू का बेटा अजय नौकरी पा गया। मगर कान्हू बाबू ने और कुछ

दिन नौकरी में रहने की दरखास्त दी। हेडक्लर्क ने उल्टा-सीधा काफी लिखा। उनके रहने पर होने वाले नुकसान की बात लिख दी।

पढ़कर अचंभा हो गया, कान्हू बाबू को बुलाया। बूढ़े चपरासी ने कारण समझकर उन्हें गुप्त शिविर से जगाकर भेजा। हड़बड़ाकर मुंह धो हाजिर हो गए।

– क्यों कान्हू जी...ये क्या?

कान्हू बाबू चुप।

– आप तो रिटायरमेंट की कह रहे थे। फिर यह क्या?

– जी, सोचा था, पर मन नहीं मानता।

– ना ना, उमर हो गई है। चालीस बरस हो गए नौकरी में! अब घर में बैठ धरम-करम करो। बेटा काम करने लगा। अब ब्याह कर दो। और लोभ छोड़ो।

– जी, लोभ नहीं है। रिटायर हो गया तो कुछ ही दिन में मर जाऊंगा। घर पर न जमीन है न जायजाद। ठाले रह क्या करूंगा?

– क्यों, इतने दिन अकेले रहे। अब...जी, जिस उमर में जो होना, सो तो हुआ नहीं, अब सर, सच कहते हैं, मगर...

– क्या, मगर क्या?

– इतने दिन अकेले रहा, आदत पड़ गई। पत्नी तो अपरिचित नारी है...उससे क्या संपर्क रहा? आज तक महीने में एक एम. ओ. रसीद उसके अंगूठे के निशान वाली रखता। वह भी तो दो बार जाली हो गई। एक बार बेटे के अन्नप्राशन पर गया था। और चार-पांच बार पूजा छुट्टियों में तीन-चार दिन रहे। बस यही संबंध है। सरकार ने नहीं दिया।

हाकिम समझ गया कान्हू बाबू के मन में गहरे बात चली गई है। बात रोक दी। एक साल नौकरी बढ़ाने की सिफारिश कर ऊपर खत भेज दिया। कुछ दिन बाद कान्हू बाबू ने फिर दरखास्त पेश की। डर में चुपचाप दोनों कागज आगे बढ़ाकर रख दिए। हाकिम ने पढ़े, "ठीक है, अजय की शादी कर रहे हो! कहां?"

– जी, हमारे चपरासी धनु की बेटी के साथ!

– ठीक है। मगर तीन दिन से ज्यादा छुट्टी दे न सकूंगा। बाढ़ के दिन हैं। चारों ओर हाहाकार है। भीषण काम है! सिर्फ तुम्हारे लिए तीन दिन छोड़ पाऊंगा।

– ठीक है, हजूर की जो दया!

अजय का विवाह हो गया। वहू को सास के पास छोड़ अजय, कान्हू और धनु तीनों नौकरी में हाजिर।

साल भर बाद। कान्हू को एक खत मिला—पोता हुआ है! खुशी का ठिकाना न रहा! चारों ओर कहते फिरे। हाकिम को भी कह दिया। सुनकर अचंभे में देखते

रहे। कान्हू ने गहरी सांस छोड़ी। सर! मुझे और अजय को एक एक छुट्टी और देनी होगी। एक वार वंशधर को देख आना होगा।

—ठीक है, जाओ।

अजय को खवर नहीं मिली। कान्हू छुट्टी लेकर अजय के पास आए। अजय अपनी सीट पर न था। धनु से पूछा तो बताया—जंवाई बाबू ठीक तुम्हारी तरह तुम्हारी जगह सोया है। तुम्हारे जाने से पहले थोड़ा कमर सीधी कर लेता है।

दोनों ठहाका लगा बैठे। अजय को जगाया—घर चलें।

वह अचंभे में भर गया

—वहीं बताऊंगा, तू चल। यह खुशी की खबर है, धीरज से कहनी है।

रास्ते में बाजार से सामान लिया। चार बजे घर पहुंचे, तब कहा—चिड़वा-चीनी ले आया हूं। खाकर सामान बांध, रख। बाजार जा रहा हूं, तेरी मां के लिए गुड़ाखू ला रहा हूं।

—पर छुट्टी! इतनी चीजें! क्या हैं?

—ले ये खत! सब सम्हाल कर रख। मैं अभी आया।

बाजार से गुड़ाखू, पोते के कमीज, खिलौने लेकर लौटे। देखा खत लिए अजय वैसे ही बैठा है। आंसू बह रहे हैं। होश नहीं...

—अरे, ये क्या? बैठा है? सामान वैसे ही है? रो रहा है?

—बापू...इस पोते पर खुशी हो रही है?

—क्यों क्या हो गया?

—मैं खुलकर बताता हूं। ब्याह के बाद बस एक रात गांव गया था। पर तब वह छूत में थी। फिर यह कैसे?

ओ, ये बात है! राम-राम! यहां ये बात पकड़कर बैठोगे तो नहीं चलेगा। तू कैसे हुआ? मैं तो अपने जीवन में कुल तीन बार गांव गया। हर वार कुछ न कुछ दिक्कत थी। हम चाकरी वाले लोग हैं। हमारे यहां ये सब नहीं चलता। पहले जमाने में बातों में हो जाता। अपनी स्त्री को कहां से संतान हुई, इसमें कोई मुनि दिमाग नहीं लड़ाता। आनंद से उसे पालते हैं।

—बापू, तो मैं भी ऐसे ही जन्मा?

—अरे हां...उठ! समय हो गया। कौन किसका पुत्र है? कोई किसी का पुत्र नहीं, भाव ही मुख्य है। उस दिन देखा कदम बाबू एक बीमार-से बेटे को लिए अस्पताल जा रहे हैं। आश्चर्य में पूछा—ब्याह हो गया, बेटा हो गया! कभी बताया भी नहीं! कहा—मेरा बेटा नहीं।...यानी बेटा मेरा नहीं...जिसे ब्याहा उसी का है। आश्चर्य में पूछा—मतलब! हंसकर कहने लगे—यानी उसके कंवारेपन का बच्चा है। पढ़ा नहीं है—

का तव कान्ता, कस्ते पुत्रः
संसारोयम्। अतीव विचित्र...

उठ। उठ!

—हां, बापू! संसार और आदमी दोनों ही विचित्र हैं। चलो चलें। बेटे के लिए क्या लाए हो, देख तो लें।

उद्भ्रांत

कपिलवस्तु। राजा शुद्दोदन का प्रमोद उद्यान। सूर्यास्त का समय। वसंत के समागम पर उद्यान अपूर्व शोभा से भरपूर। किंशुक, कुरुवक, कुटज, अशोक आदि पुष्पों से तरुराजि नमित। पिककुल अविराम कुहूतान में, भ्रमर गुंजन मिलित होकर अद्‌भुत झंकार उत्पन्न कर रहा। प्रासाद की लास्यमयी तरुणियां अभी प्रमोद उद्यान की पुष्करिणियों में जल क्रीड़ा में डूबी हैं। उनकी तरंगायित देह और छंदायित हास्य मन में मादक मदिरा परिवेषण कर रही। गंधवाह मंद-मंद सुगंध विनरण कर रहा।

निकट ही प्रस्तर वेदी पर गौतम मौन बैठे हैं। युवतियां पल-पल में कटाक्षपात कर रही, उधर उनका भ्रूक्षेप भी नहीं। उनकी उदास आंखें असीम में कहीं खोई हुई। चिंतन में कपाल रेखा परिस्फुट। तप्त दीर्घ सांस निकल असीम में लीन हो रही हैं।

वे सोच रहे हैं...यह वसंत चिरस्थायी नहीं। यह जीवन भी चिरस्थायी नहीं। इस अस्थायी परिवेश में उन्माद अस्थायी होगा। अस्थायी वस्तु या भाव दुखदायी होता है। इस जीवन में आद्य में दुःख, मध्य में दुःख और अंत में भी दुःख! जीवन का हर पल दुःखदायी है...

गहरी सांस छोड़ भींगे नयनों से वे चारों ओर देख रहे हैं। पिछले कुछ दिनों की हर घटना पर पुनः विचार करने लगे।

वह कंपित काया, गलित चर्म, दंतहीन जराग्रस्त वृद्धा, वह पूतिगंधमय, मार्ग के किनारे परित्यक्त एवं फिर निर्लज्ज भाव से जीवित जीवन। शव और शववाहकों के पीछे रोते हुए नर-नारी...एक-एक कर सारे दृश्य आंखों के आगे तैर गए। अश्रुबिंदु हृदय पर रत्नजटित मुक्ताहार पर ढुलक गए।

फिर भी...फिर भी मानव निर्लज्ज और निमर्म भाव से जीना चाहता है। क्यों?

गौतम निशीथ में जगकर धीरे-धीरे प्रासाद की ओर बढ़े। द्वारपाल को आदेश दिया, छंदक से कहा, रथ प्रस्तुत करे!

अपने कक्ष में देखा—युवरानी गोपा द्वार पर खड़ी है! शिशिर-स्नात कमल

कोरक-सी आंखें छलछलाई हैं।

गौतम उनकी उपेक्षा कर कक्ष में आने लगे, गोपा ने हाथ पकड़कर रोका। गौतम चुपचाप थम गए। दृष्टि वेदनापूर्ण थी।

मान में गोपा ने कहा—प्रमोद उद्यान में एकाकी...गला भरा गया।

गौतम के भाल पर रेखाएं स्पष्ट थीं। गोपा की ओर देख सोचने लगे—इस तरंगायित निर्मोक तले वीभत्स दृश्य छुपा है। यह तृष्णा उसी वीभत्सता से उत्पन्न है।

एक बार गोपा को देख तेजी से प्रासाद से निकल आए। आंसू रोकने के कारण गोपा के बिंबोष्ठ कांप उठे। मान में गौतम के पदचिह्नों पर लेट गई।

रथ प्रासाद से निकलकर राजमार्ग पर चल पड़ा।

गौतम ने देखा कि पास में एक पुरुष है। हाथ में कमंडल। अंग पर कोई वस्त्र नहीं।

रथ रोककर संन्यासी के निकट गए। संन्यासी ने ऊद्भ्रांत होकर गौतम की ओर देखा। गौतम ने कुछ क्षण अभिभूत हो संन्यासी की ओर देखकर पूछा—आपका परिचय?

"यही जानने हेतु तो गृहत्याग किया।" संन्यासी ने कहा।

—आप क्या सोच रहे हैं?

—बंधु! क्या सोचूं, अब तक तय नहीं कर पाया।

—आपका गंतव्य?

—क्या पता?

—अचानक अभिवादन कर संन्यासी ने विदा ली।

अजीब जीव है! वास नहीं, परिचय नहीं, धन नहीं, फिर भी कैसे ऐश्वर्यवान लग रहे हैं! गौतम आश्चर्य में कुछ क्षण संन्यासी को देखते रहे। छंदक से पूछा—तुम इन्हें जानते हो?

मुस्काकर छंदक ने कहा, "युवराज! इनका परिचय देश, काल, पात्र में सीमित नहीं रहता। इनका परिचय, चिरंतन है।

रथ लौटाओ—गहरी सांस भर आदेश दिया।

उसी रात निशीथ में सोई गोपा को शिथिल आलिंगन से मुक्त कर राहुल को एक बार निहारा और राजप्रासाद से चले आए। अगले दिन प्रातः छंदक गौतम का रत्नहार, मूल्यवान नरिछद, कर्तित केश, महारात शुद्दोदन के चरणों में रख चुपचाप साश्रु खड़ा रहा। शुद्दोदन माथे पर हाथ रख बैठ गए। अंतःपुर में गोपा संवाद सुनकर मूर्छित हो गई।

राजगृह के उपांत में एक आश्रम।

युवक गौतम अनेक देश पर्यटन कर तपती दोपहर में आश्रम के द्वार पहुंचे। आश्रम में से आवाज आई—

"क्या चाहते हो युवक?"

"परम सुख!" गौतम का वेदनापूर्ण उत्तर था।

राजपुत्र ने कहा, "परम सुख जीवन का लक्ष्य होना चाहिए, वत्स! कठोर साधना से वह प्राप्त होता है। जब मन निस्तरंग पुष्करिणी की तरह शांत हो, स्थिर हो, किसी इच्छा का उद्वेग न हो, तब समझना कि तुम्हारी साधना सार्थक हुई। उस अवस्था में अपार आनंद मिलता है। कठोर साधना में अरूप ब्रह्मलोक पा सकोगे।"

उसने कहा, "कठोर साधना के बल पर तुम अकिंचन आयतन स्तर पर जन्म लोगे, वहां मन निरुद्विग्न और शांत होगा।"

गौतम मन लगाकर उपदेश सुन रहे थे, फिर अनमने हो गए। प्रश्न उठा—मन की यह दशा चरम लक्ष्य हो सकती है? ऐसी अवस्था में मैं प्रश्न का उत्तर पा सकूंगा? मानव जाति के दुःख के अवसान का उपाय मिल सकेगा?

मन संदेह में झूलने लगा। रात के मध्य पहर में कालाम और राजपुत्र जब गहरे ध्यान में थे, गौतम् आश्रम छोड़ चल पड़े, अपनी समस्या का समाधान ढूंढने।

इस अनंत सृष्टि में मनुष्य का स्थान कहां है? उसका विकास किस दिशा में होना चाहिए। इंद्रिय सुख की वृद्धि, नए-नए उपाय खोजकर उसमें वृद्धि—क्या यही विकास है? मानव इंद्रिय सुखों की ओर इतना आकृष्ट क्यों है?

कौन देगा इसका उत्तर? पागल-से वे एक प्रांतर से दूसरे प्रांतर तक बार-बार फिरते रहे। कहीं उनका मन अधिक समय स्थिर नहीं रहा। दुर्वार प्रश्न ज्वाला में बेचैन रहे! उद्‌भ्रांत रहे। पूंजीभूत प्रश्नों के दाब में मस्तिष्क की स्नायु सदा उत्तेजित रहती।

कुछ दिन हुए खाना नहीं खाया, नींद नहीं आती। थके हारे एक उन्मुक्त प्रांतर में लेटे थे। आकाश में सप्तर्षि मंडल समन्वित प्रश्नवाची चिह्न जाज्वल्यमान हो उठा है।

अगली सुबह गौतम ने उरुवेल अरण्य में रमणीय स्थान देखा। चारों ओर घने वन में कलकल निरंजना बह रही थी। जगह-जगह स्नान मंडप थे। वनराई के उपखंड में विस्तीर्ण शस्यक्षेत्र और दूर शांत स्निग्ध जनपद था। सारा दृश्य एक चित्रपट बना था।

गौतम ने निरंजना में स्नान किया। तट पर ध्यान लगाकर बैठ गए।

भीगे काठ से कभी आग नहीं निकलती। सूखे काठ से ही आग संभव है। कामनासिक्त शरीर में ज्ञानाग्नि होना संभव नहीं। कठोर कृच्छ साधना से सारी कामनाएं मिटानी होंगी, यह रमणीय स्थान साधना का क्षेत्र बने।

कुहू...कुहू...कूहू...!!

गौतम इंद्रियों के सारे द्वार रोक चिंतन में लग गए। मुंह से वायु प्रवेश कर हल्के-हल्के आने लगी तो दांतों से मुंह बंद कर जीभ को कसकर दबाया! धीरे-धीरे सांस पर नियंत्रण कर कुछ दिन बाद सांस लेना भी स्थगित किया। धमनी में तीव्र वेग से रक्त मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होने का शब्द सुना। लगा वे दो भाग में बंट गए हैं। फिर भी वे निश्चल रहे।

प्रतिदिन भोजन कम करते गए। अंत में एक कण पर निर्भर रहने लगे। एक दिन उसे भी त्याग कर वन तृण ग्रहण किया।

पर यह भी रसमय...

तृण त्याग कर गौतम ने पवन आहार किया।

सारा शरीर वृहत अग्निमय पात्र जैसा लगा। कभी लगा हजारों दंतुरित छुरियों से धीरे-धीरे काटा जा रहा है। फिर भी वे स्थिर, अचल रहे।

पर वह ज्ञान का आलोक कहां? जीवन पहेली का समाधान कहां? जीव की सृष्टि क्यों? मृत्यु क्यों? इसका उद्भव किससे? विलोप किसमें? समाधान की उत्कंठा में सांस रुकने लगी।

इस जीवन का लोप ही श्रेय है, समाधान असंभव है...लोप से समाधान कैसे? शरीर की यातना से समाधान असंभव है। शरीर को जितनी यातना दें, उतना ही महत्व पा रहा है।

वे धीरे-धीरे जगे। आहार संग्रह किया। पास में तपस्या कर रहे पांचों तपस्वियों ने आहार ग्रहण करते देख लिया। कहीं मन खिंच न जाए, इस भय से वहां से पलायन कर गए।

आहार के बाद स्वस्थ हो ध्यानमग्न हुए। पृथ्वी के जन्म से जीवन प्रवाह की हर अवस्था मानस पटल पर उद्भासित होने लगी। युग-युग जीने की कामना और उससे उत्पन्न कर्म, कर्म से जन्मा दुःख, हर जीव उस दुःख का स्पष्ट अनुभव कर सके। ज्ञान के प्रकाश में चेहरा दिव्य ज्योति धारण कर रहा था।

"मिल गया...ज्ञान का आलोक...मुझे मिला..."

आसन से खड़े हो चारों ओर देखा। मन शांत, स्थिर, निश्चिंत था।

"मैं बुद्ध हूं, जीव के दुःख ज्ञान से दूर करूंगा,"

"प्रथम शिष्य कौन होगा?"

वे धीरे-धीरे आगे चले। हर पग पर आनंद गीत झंकृत होने लगे।

पास में संन्यासी को देख बुद्ध ने संकेत में बुलाया। मुस्काकर संन्यासी बुद्ध के आगे खड़े हुए। बुद्ध ने पहचाना—वही संन्यासी है।

"संन्यासी, मैं बुद्ध हूं।"

संन्यासी ने अभिवादन किया। दृष्टि वैसे ही अद्भुत थी।

"मैंने चरम सत्य प्राप्त किया।"

संन्यासी के कान खड़े हो गए।

"यह जीवन दुःखपूर्ण है।"

"दुःख!" संन्यासी ने धीरे-धीरे सिर हिलाया।

"दुःख का कारण कामना है।" बुद्ध ने निश्चय में कहा।

"कामना?" संन्यासी ने संदेह में पूछा।

"कामना में दुखविनाश।" दृढ़ स्वर में बुद्ध ने कहा।

"विनाश?" मुस्काकर संन्यासी ने पूछा।

"संन्यासी, उद्भ्रांत हो! मैं बुद्ध हूं!"

"बंधु, हो सकता है। आगे बढ़ो बंधु!"

संन्यासी दूसरी राह आगे बढ़ गए।

बुद्ध राजगीर की ओर चले...मेरा पहला शिष्य मेरे सत्य का पहला संदेहकर्त्ता। चरम सत्य के लिए मनुष्य में बुद्धि का विकास जरूरी है।

पर...संन्यासी क्या सोच रहे हैं? दुःख या सुख की अनुभूति...मन का विकार है। चरम सत्य की दृष्टि से दोनों ही नियम से बने हैं। दोनों में अंतर नहीं। सूखा काठ या खिला फूल—दोनों विराट के भिन्न प्रकाश हैं। पर वो बाद में। पहले सामाजिक मनुष्य का संस्कार जरूरी है।

एक मध्यवित्त परिवार का मूसा

ठंड पड़ने लगी है। दिन भर मेहनत करने के बाद चासी-मजूर, कचहरी वाले जिस तरह थके पांव घर लौटते हैं, मेघों के फाहे नीले अंबर में उसी मंथर गति में घर लौटने लगे हैं। उदास। जीते रहे तो अगले बरस फिर मुलाकात। फूलगोभी के नमूने बाजार में आने लगे। घेरा दो इंचा आठ आने। पचास पैसे! यहां मोल-भाव नहीं, हाथी के दांत, मरद की बात। लेना है तो लो, वरना दूसरों को रस्ता दो। मध्यवित्त लोगों को दुकानदार से सुनना पड़ता—बेटा ब्याहने को मन, लेकिन जेब में नहीं धन!!...टु बी आर नाट टुबी, दैट इज द क्वेश्चन। आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक...हर बात में दो नाव में पांव रखने की पीड़ा, यानी गोभी न खरीदकर या फिर अचानक गोभी खरीदकर मुंह बिदकाए घर लौटना...।

अन्य दिनों की अपेक्षा उस रात कुछ पहले ही सब को नींद आने लगी। सारा परिवार अपनी-अपनी जगह अजीब-अजीब भंगिमा में सो गया। तीन रात हुए, सब जाग रहे हैं कि कौन छोटे बेटे का कलेऊ खा जाता है, उसे पकड़कर पिटाई कर देंगे। उसमें चाहे मरे, पाप लगे या फांसी लगे—कोई परवाह नहीं।

छोटे बेटे की तबीयत ठीक नहीं। डाक्टर ने दस दवाएं लिख दी हैं। साथ में मांस, अंडा, दूध, छेना आदि चीजें खाना निहायत जरूरी है। आजकल तो बात-बात में इतना रिसर्च चल रहा है, तो चिकित्सा विज्ञान क्यों अर्थशास्त्र में दिमाग लड़ाएगा? सब अपनी-अपनी देखें। मगर एटॉमिक साइंस से लेकर हर विज्ञान यह बेचारा आदमी सम्हाले हुए है। इसमें उसकी ही भागमभाग, दुर्भावना, व्यर्थता, हीनभावना आदि के प्रति जो क्रोध है, इन सबको कौन देखता है? उसे कौन पूछता है?

घर वाले विजय बाबू और घरनी अनुपमा ने खूब सोचकर, खर्च में कटौती की और छेने का बंदोबस्त किया है। मगर भाग्य का क्रूर उपहास, रोज रात में उसे कोई खा जाता। आधा किलो खांटी दूध (ग्वाला सौगंध खाकर कहता है, दूध खांटी है), मगर इतना-सा ही छेना! वह भी यों हवा में उड़ जाता है। हालांकि कटोरे में जरा-सा बच जाता है। मगर वह खाने देने का साहस नहीं होता। सांप-बिच्छू, हाथी, चूहा, बिल्ली, आदमी, क्या पता कौन खाता है।

उस अजान शत्रु को जानने के लिए तीन रात सारा परिवार (बच्चे तो सिर्फ कुतूहल में) दस बजे तक सारे काम खतम कर तरह-तरह के हथियार थाम अलग-अलग जगह रखवाली में बैठ जाते हैं। विजय घर का सबसे भयंकर अस्त्र, मफसली-सी मोटी लाठी लिए दरवाजे पर रखवाली पर है। छेनाचोर (जंतु हो या आदमी) सदर दरवाजे से ही आएगा, यह जरूरी नहीं। बस घर के कर्ता होने के नाते मुख्य दरवाजे का दायित्व उन्हें लेना चाहिए और सबसे संहारक हथियार भी उनके पास रहना चाहिए। ऐसी आत्माभिमानी युक्ति के अनुसार विजय वहां है। हालांकि सदर दरवाजा कुछ दूर है, अतः उसे वहां अकेले रहना पड़ता है। (ऊब और एकाकीपन टालने हेतु वह बीच-बीच में 'अरी सुनती हो' की आवाज झूठ ही लगाकर अनुपमा में खीझ पैदा करता है) लाठी थामने का उसका ढंग शत्रु से ज्यादा उनके अपने अंदर आतंक पैदा करता है। अनुपमा रसोई के द्वार पर रखवाली किए हैं। बड़ा बेटा बाथरूम के नाले के पास। मझला बेटा बाथरूम की खिड़की के पास है। छोटे बेटे और बेटी को कोई डयूटी नहीं दी जाती।

तीसरी रात फिर वही हो गया। साढ़े तीन बजे। चौंककर विजय ने देखा, वह पांव पसारकर ऊंघ रहा। लाठी छाती पर लंबी हो सांस के साथ उठती-गिरती थी। मानो सिर हिला कहती हो—सो ले रे! वैसे लेटे ही अनुपमा की ओर नजर की—वह रसोई की ओर संकरे द्वार पर सिर रख सो गई। पांव दीवार पर टिकाए। एक हाथ उठाकर किवाड़ पकड़े थी। कहीं किसी समय, किसी हालत में गहरी नींद का वरदान विष्णु से पाया था। वे तो प्रलय तरंग में भी भयंकर नाग पर सो सकते हैं। कभी-कभी अनुपमा का हाथ नीचे गिर जाता है। हर बार वह पूर्वावस्था में चला जाता है, जहां नींद की पूर्वावस्था में था। इस क्रिया-प्रतिक्रिया में अनुपमा की चैन की नींद में कोई रुकावट नहीं आई। गहरी नींद का यह कौतुक देख विजय को हंसी आ गई। अगले क्षण गुस्सा आ गया। चिल्ला उठा। मुझे जरा-सी ऊंघ आई कि सब सो गए! किसी में जिम्मेदारी नहीं! एं देखना...।

सब हड़बड़ाकर रसोई में जाकर देखने लगे। काम खत्म हो चुका है। एक दूसरे को अवाक देखते रहे। कुछ क्षण बाद कहा, "अजीब बात है। ठीक उसके आने के समय हमें नींद आती है। दैवीमाया!"

थोड़ा सोचते तो इसका तर्कसंगत कारण मिल जाता। जो छुप-छुप छेना खाने आता है, वह कोई भी प्राणी हो, जानता है (प्रकृति ने सबमें आत्मरक्षा का ज्ञान दिया है) कि जाड़े की रात में आदमी को आखिरी पहर में गहरी नींद आती है। अतः चोरी का वही समय सबसे अच्छा है। ठंड का पहला हमला आखिरी पहर में होता है। मंदिरों में जब घंटे बज उठते हैं, मृदंग के गंभीर नाद में भयंकर राग में (एक प्रातःकाल की राग जिसे सुने तो लगे कोई नींद से उठ अंगड़ाई ले रहा है और जड़ता तोड़ रहा है) आवाहन बोला जा रहा है—अरे मंगल आरती, गगन

के पट में, जागो—नगरवासी भोर भई अंतर में, या गिरजे से घंटा ध्वनि आह्वान दे रही है—वेकअप ब्रादरन, द लाइट कमेथ, हेल ओ हेवेनली लाइट हेल, या मस्जिद मीनार से मुयाज जिन सुनाई दे रहा है—अल्लाह हो अकबर, अल्ला इलाही इल अल्लाह मुहम्मद रसुलल्लाह। मगर तब बिस्तर पर गृहस्थ धृत झींगा रूप जय जगदीश हरे और चोर लोग अपनी खतरनाक जीविका के अभियान में निकले हैं। यह प्राकृतिक नियम है।

मगर विजय अभावी ठहरा। सदा अभाव के अंधकारमय कैद में घिरा। सदा वह आर्त-भयार्त! मानसिक हालत बेचैन कर दे। दुनिया को जलाकर एक-एक धनी का गला भींच तांडव करने की कल्पना कुछ आराम देती है। अपने सुख की कामना पूरी करने में विफल होने पर विद्रोह की कल्पना करते हैं—धरती से शोषण और दुर्नीति मिटाने हेतु आंदोलन करने की सोचता है। पूंजीपति के विरुद्ध शोषित लाचार करोड़ों लोगों के लिए उसके मन में दर्द भर जाता है, आंखें गीली हो जातीं। एक खांटी यथार्थवादी क्रांतिकारी की तरह स्वयं को औरों से ऊंचे रख अपनी दरिद्रता को सह जाता है। उस पर गर्व करता है। उत्तेजित मन कल्पित क्रांति की विस्तृत योजना में डूब जाता है। पर धीरे-धीरे मन व्यक्तिगत कामना से उतर आता है, विफलता के कारण क्रांति की पूरी योजना बन जाती। उनका मन धीरे-धीरे परोक्ष में उन्हें सम्मानित नेता का सुख और गर्व देता है। उसमें विस्तृत योजना एक पर एक चलती है। अहं का विस्तार करते और क्रमशः क्लांत हो जाते।

अचानक वे चौंककर देखते—उनका आंदोलन उनकी व्यक्तिगत लालसा बन गया है, विफलता से उत्पन्न प्रतिहिंसा भड़क उठी है। गरीब के प्रति संवेदना भी एक मायारूप है। आतंकित हो देखते—गरीबी के बारे में जो नए-नए तथ्य मिले हैं, उनसे दुनिया को नई राह, नया प्रकाश दिखा सकेगा—ऐसा सोच तसल्ली हो रही है। यह भी व्यक्ति कामना का मायारूप है। खिन्न हंसी में मन ही मन कहते हैं, "बड़ा मायावी जीव है, यह किसी का नहीं।" तो क्या आदमी सामाजिक जीव नहीं? समाज चेतना सिर्फ झीना आवरण भर है? ये बातें उसे झुका देती हैं। खुद को विच्छिन्न और निस्संग समझ घबरा जाता।

मन फिर रुआंसा हो उठता। एक कोह हृदय में से उठता कहता—हे गोविन्द, मेरा उद्धार करो! साधारण बनने का साहस दो! हे प्रभु! मैं आपकी महानता के आगे अपनी क्षुद्रता का अनुभव कर आनंद पाता हूं। साहस पाता हूं, यह गरीबी ही भली! यही ठीक किया...ऐसे ही मेरी छाती में तीव्र दहन रहने दो...

जगन्नाथे किछि मांगू नाहिं, मागुछि सरधा बालि किछि...।

फिर मार्क्सवादी मन उन्हें स्वयं को अंगुली दिखा विद्रूप कर कहता, "सरधा बालू से मुट्ठी भर लेकर तू करेगा क्या...? स्साला बुर्जुआ कहीं का...केपिटलिस्टों से भी खतरनाक है तू...इससे सब सावधान...यह विजय...यह स्साला स्वार्थी...केवल

अपने सुख-संभोग की कामना करता...और उसमें विफल होकर प्रोलिटेरियट बनता है...अपनी कामना को साधारण तत्व में डाल सबको पागल करता है...मौका पाते ही प्रोलिटेरियट को धोखा देकर केपिटलिस्ट बन जाए...जो दानव की तरह औरों को कुचल अकेले प्रतिष्ठा पाने को व्याकुल है। इन बुर्जुआ को निर्मूल कर दो!"

कहते-कहते फिर वही कोह छाती में उभरा...मुझे निर्मूल कर दो भगवान!...मैं, मेरा सुख, मेरा गौरव, मेरी प्रधानता के सिवा किसी को नहीं देख पाता, कुछ नहीं समझ पाता, तुम्हारी दुनिया की अजीब बात है...किसी को चाह नहीं पाता...ये मुझे अज्ञ अंधा कर देगा प्रभु...अपने चारों ओर घूम-फिर मैं तिल-तिल मर रहा हूं...मैं असहाय हूं प्रभु...तुम्हीं ने तो कहा है हर मानव सात्विक-राजसी-तापसी रूप का मिला-जुला है, तामसिकता और राजसिकता से न डरकर, घृणा न कर मुझे पुकारो...आहे नी ल शइल...प्रबल मत्त बारण, धन मागु नाहिं...ठीक करें कांचने वांछा नाहिं...मांगई प्रभु कृपा तोहर...मुझे हिंसा-ईर्ष्या पागल कर जला दे रही है प्रभु...

यों सब अपने को वास्तववादी या वैज्ञानिक भावापन्न कहते हैं। अंदर अलौकिक देखने को व्याकुल हैं। विश्व में अगणित तारे हैं, जिनमें करोड़ों सौर जगत में रह जाएं, करोड़ों वर्ष से ग्रह उपग्रह तारे फिर रहे हैं। एक-एक परमाणु एक-एक सौर जगत है, अपनी देह एक स्वयं चालित यंत्र है, पेड़ का पत्ता सूरज की किरण से कितने अद्भुत उपाय से खाद्य निर्माण करता है। जगत की ऐसी अनेक अलौकिक बातें हैं। इस अलौकिक को समझने के लिए चाहिए ज्ञान, बुद्धि, प्रेम जो आत्मा को विकसित करता है और जिसके लिए चाहिए साधना। पर साधारण आदमी कितना भी पढ़ा-लिखा हो, चतुर हो, जीता है इंद्रियग्राह्य (जो सहज लभ्य है) ज्ञान पर निर्भर रहकर। सुख-संभोग के लिए कामनाएं उसे परिचालित करती हैं, मिहनत कराती हैं। वह कुछ उत्तेजक, इंद्रिय-ग्राह्य अलौकिक बात देखना और उससे लाभ उठाना चाहता है। उसके लिए यह केवल उत्तेजना पाना ही होता है। वह वास्तविक प्रेम का आनंद नहीं पाता, क्योंकि उससे विराट के साथ संयोग नहीं हो पाता। वह इंद्रिय उत्तेजना भी घिसी पिटी हो जाती है। वह कुछ नया खोजता है।

ऐसा साधारण आदमी अभावग्रस्त हो जाता है तो मामूली-सी बात में भी अलौकिक उपाय से धन या सुविधा पाने को भगवान की कृपा समझता है। विजय ने सोचा, क्या माखन चोर कन्हैया छेना चुराते हैं? अनुपमा की गोपाल पूजा की बात सफल हुई। सती! धन्य हो! मैं तुम्हारे योग्य नहीं।

मन में आते ही आंखों में आशा चमकी। विद्रोही मन ने फटकारा, "छिः विजय! यह क्या सोचने लगा! तू केपिटलिस्ट है? औरों को ठगकर गुप्त धन हासिल कर मौज चाहता? गीता में भगवान कहते हैं—जो लालसा हेतु व्याकुल, कर्मेंद्रियों को रोककर मन के भोग हेतु व्याकुल है, वे ढोंगी हैं। भोग की इच्छा हुई तो उसे चरितार्थ कर, मन से यदि लालसा को हटा न सके, तो भोग के लिए जो कष्ट

या विपद अपना रहे हो, उसमें भोग लालसा काफी कम हो जाएगी। क्योंकि दायित्व काफी आ जाता है। औरों के साथ कई तरह का संबंध होता है। कई तरह का संघर्ष रहता है। कर्म की जगह यों गुप्त धन हासिल कर सोचोगे—समाज ने कुछ नहीं दिया। भगवान की मुझ पर सदा कृपा दृष्टि रही। यह न आध्यात्मिक बात है न मार्क्सवादी।''

फिर भी आंखें सिकुड़ गई। उनकी कामना भगवान की अलौकिक कृपा की बात उकसा देती है। दोनों का मन संयोगी मन होता है, शायद कहता है—ऐसी अलौकिक घटना संभव है? पहले यह तो देख लो कि तुम्हारी कामना तुमसे छल कर रही है या नहीं? कम से कम बिना ढले देख तो लो कि हो क्या रहा है।

ऐसा कर्मठ एवं समदर्शी योगी मन करोड़ों में एक होता है। विजय में है या नहीं, कैसे दोष दें! श्रीरामकृष्ण ने कहा है—आदमी में महाभाव या प्रेम होना बहुत कठिन है। शायद करोड़ों में एक में हो। साधारण आदमी में सिर्फ भाव होता है। (तरह-तरह के भाव, जिन्हें सम्हालना कठिन है। एक भाव दूसरे के विपरीत है। इतने भावों का एकीकरण प्रेम से होता है)।

तय रहा कि अगली रात हर हाल में सारी रात जागेंगे। सुबह कॉफी खरीदी गई। अनुपमा ने मन लगाकर पूजा की। दस बजे रात तक सबने खा-पीकर बड़े गिलास में एक-एक काफी पी। अपने-अपने हथियार लेकर अपनी-अपनी जगह डट गए। हर घंटे कॉफी का दौर चला। आज छोटे बेटे ने भी भाग लिया। रात के तीन बजे। विजय और अनुपमा की आंखें चौकन्नी थीं। मन में व्यथापूर्ण प्रार्थना थी। छोटे बेटे ने आवाज लगाई—

बापू...वो गया...वो गया!!!!

छोटे बेटे ने अंगुली के इशारे से रसोई की ओर दिखाया—थाक पर बड़ा मूसा कटोरे का ढक्कन हटाकर खोल चुका था। छेना गिर गया था। मुंह से बूंद-बूंदकर छेना के पोड़ पीठा(एक प्रकार की मिठाई) का किनारा खा रहा था। अनुपमा पोड़ पीठा अच्छा बनाती है। पोड़ पीठा विजय की भी प्रिय मिठाई है। पोड़ पीठा का मोटा किनारा, अधजला भाग, काफी चिकनाई भरा होता है। महक से भरपूर। मूसा वही किनारा सामने वाले पंजों से दबाकर कुतर-कुतर खा रहा था। पांच सशस्त्र लोगों को निकट देखकर भी कोई डर नहीं। हाव भाव से लगता था कि खूब तृप्तहोकर खा रहा है। गुलाबी नासाग्र भोजन के आनंद में फूल उठता था। गोल-गोल आंखें उस दल की ओर निर्विकार भाव में ऐसे देख रही थी, मानो कह रही हो कि बैठ जाओ, बच्चो बैठ जाओ!

मूसा को देख विजय व अनुपमा एक दूसरे को हताशा से देखने लगे। विजय के सिर में मानो आग लग गई। मन ही मन हुंकार लगाई—तेरी ये हिम्मत! मेरा पीठा खा रहा है! तेरी मौत आ गई है!

लाठी को ऊपर उठाया, पीठ पर ले गया। खींचा कि बड़े बेटे सोना (इस साल मेडिकल कालेज में नाम लिखाया है) ने कहा, "डैडी, इतने जोर से मारने की जरूरत नहीं। सेकेंड सर्विकल वर्टीब्रा पर ठोंक देना काफी होगा। बस्स!"

विजय का प्रलयकारी क्रोध पल भर में आनंद-कौतुक-वात्सल्य भरे हास में बदल गया। अब तक मूसा मजे में खाए जा रहा था। ठहाका सुनकर खाना बंद कर दिया। पिछले पांवों पर खड़े हो लाल-लाल कान चारों ओर फिराए। आवाज जानना चाह रहा होगा। अब तक वह एक ही शब्द से परिचित था—गया-गया, पकड़ो-पकड़ो, मारो...पीटो! इस भयंकर क्रोध को वह नाप चुका था। इतना ही नहीं, गृहस्थ किस-किस हथियार का प्रयोग करते हैं, कैसे चलाते हैं, किसकी कितनी ताकत है—सबको वह भांप चुका था। हर हालत में बचकर भागने की क्षमता हासिल कर चुका था। अतः अब तक बेफिक्र था। युद्धारंभ के जीरो आवर की प्रतीक्षा करता रहा। पर इस अट्टहास के कान में पड़ते ही चौंका। किसी और बात की आशंका थी। वह घबरा गया। क्या करे कुछ समझ नहीं पाया।

विजय रुका नहीं। सम्हालकर लाठी मारने चला। मूसा वह चिरपरिचित आवाज सुन, अपने सामने वाले पंजे उठाए, प्रार्थना मुद्रा बनाई (शायद गज उद्धारण मुद्रा बनाई हो), विजय की लाठी थाक पर पड़ी। सारे डब्बे, बोतल झनाक से गिरकर बिखर गए। जीरा, मिर्च, चीनी, नमक मिलकर एकाकार हो गए। अनुपमा का सारा नैपुण्य, श्रम एक पल में खत्म। विजय तो डर के मारे सहम गया। चिल्लाया—ससुरे गाड़ी भर शीशी, डब्बे भरे हैं थाक पर! इतने की क्या जरूरत है, समझ नहीं आता। गुस्से में अनुपमा ने कहा, "तुम्हें किसने कहा कि जरूरत नहीं है..."

विजय कुछ कड़वी बात कहने जा रहा था। तभी पांव लड़खड़ा कर डब्बे पर पड़ा। वह धड़ाम से फर्श पर गिर गया। घबराहट के मारे अनुपमा के मुंह से चीख निकल गई। क्रोध व अपमान भूलकर सबने अनुपमा की ओर देखा। कोई समझ नहीं पाया कि क्या जवाब दे। क्रौंचवध देख वाल्मीकि का शोक अचानक श्लोक के रूप में निकला था। अनुपमा अपनी बात पर खुद अचंभे में भर गई।

तभी छोटा बेटा चिल्लाया, "वो भागा, बापू! आपने लाठी उठाई कि छलांग मार मेरे गाल पर धक्का दे भाग गया।"

सबने एक साथ द्वार की ओर देखा। कोई निकल न सका। आपस में धक्का-मुक्की होकर रह गया। फिर भी सब बाहर निकले—पर मूसा कहां? अब उसे ढूंढने से कोई फायदा नहीं था। छोटे बेटे के गाल पर से पर नजर गई, वहां खून रिस रहा था।

घाव धोकर दवा लगाई। विजय निष्फल क्रोध में भर गए। अपने को अपमानित सा महसूस कर रहा था। मन ही मन कहने लगे—स्साला! जरा-सा मूसा! पर भगवान-सा अपराजेय! सो इनविजिबल! आलमोस्ट लाइक गॉड! एक छलांग में पांच हाथ कूद

गया! हमें लहू-लुहान कर गर्व से चला गया। पर गया कहां? गायब! आश्चर्य में उनका क्रोध और तेज होता। हर बार दांत कटकटाते!

भोर हो रही थी। मानसिक शारीरिक अवसाद में भरकर सब सो गए। भोर होते ही विजय जागे। अंदर-बाहर हर जगह ढूंढा। नाले, द्वार बंदकर चारों ओर देखा। किधर से घुस आता है? पता ही नहीं चला। बड़े बेटे ने कहा—बापू! व्यर्थ ढूंढ रहे हैं। कोई पता नहीं चलेगा।

– क्यों?
– वो किस जात का मूसा है, पता है? रेट्स नार्वेजकस।
– मूसा की जात और गोत्र?—विजय ने खीझकर पूछा।
– हां हमने जूलाजी में पढ़ा है। ये बड़े चालाक होते हैं। इनका मूल एशिया है। अब ये दुनिया भर में फैल चुके हैं। इंग्लैंड में ये सन् 1730 में गए थे।
– फालतू! किसी ने इनके पीछे जाकर देखा है?
– अलबत है! उत्तर अमेरिका में इसकी एक जात के मछरंझा भी हैं, उनकी निचली चोंच में बड़ी थैली झूलती है। वहीं मछली पकड़कर रखते हैं। कुछ जमाकर फिर मजे से खाते हैं। एक बार मछरंझा की थैली कांटे में फंसकर फट गई, वह मछली न पकड़ सकी। जो पकड़े वही छेद में से गिर जाए। बिना खाए-पिए वह सूख गया। एक जूलाजिस्ट गौर कर रहे थे। पीछे-पीछे डेढ़ सौ मील चले, महीने भर बाद पकड़ में आया, मछली पकड़ने पानी में डूबा कि उन्होंने भी डुबकी मारी। पकड़ा। फटी जगह सिलाई कर दवा लगाई। घाव ठीककर छोड़ दिया। कुछ दिन साथ घूमे। वह स्वस्थ हो आहार लेने लगा। तब घर लौटे। डेढ़ महीने तक न खाने का ठिकाना, न सोने का। घर लौटे तो खुद बीमार हो गए।

सुनकर विजय अभिभूत हो गए! यही मानव लाखों को उल्लास में बम से उड़ाता है। शिकार कर पशु-पक्षी के वंश का लोप कर रहा है। इसी में ऐसे प्रेमी लोग भी हैं कि मामूली जीव के पीछे खाना-पीना छोड़ स्वस्थ करते फिरते हैं। ये लोग मानव धर्म को पृथ्वी पर जिंदा रखे हैं। घोर निष्ठुरता और हिंसा के बावजूद मानव पर विश्वास नहीं टूटा। इनके कारण आशा बनी है। युग के महापुरुष इन दुर्बल और शक्तिशाली प्रेमियों के हाथ में जय पताका देते आए हैं। देखो, मैं भी एक मूसा मारने...आंखें सिकुड़ आईं। सारी बात भूलकर कुतूहल में पूछा, "तो वह रेट्स हमारे भारत में कब आया?"

– यह पता नहीं। मेरे खयाल में श्रीगणेश ने इनमें से एक को वाहन बना, बाकी को छोड़ दिया।
– इस खयाल के पीछे कोई कारण?

– तब भारत में खूब फसल होती थी। क्रय-विक्रय का माध्यम वही थी। अब तो फसल ज्यादा होने पर अर्थनीति में संतुलन हेतु फसल नष्ट कर देते हैं। पर तब प्राकृतिक उपाय से शायद...

– ओ ये साइंटिफिक है। पुराण कथा हेतु साइंटिफिक कारण निकाला। पर तूने फसल नष्ट होने की बात कही। वह पूंजीवादी देश में होता है। वहां वे लोग तरह-तरह का शोषण कर, जरूरत हो तो मनुष्य को मारकर भी धनपति बनने को पागल हैं। पर समाजवादी देश में...

– वह जानता हूं। मेरा कहना है–प्रकृति अपने हिसाब से समाजवाद स्थापित कर रही है। एक को दूसरे से लड़ाकर। आदमी में तभी तो हिंसा-ईर्ष्या, लोभ भरा है। पंद्रह दिन पहले विश्व की बड़ी साइंस पत्रिका में छपा है–एक गांव में मधुमक्खी के छत्ते कम हो गए, रिसर्च से पता चला कि लोगों ने कुत्तों की संख्या बढ़ा दी है, इसीलिए ऐसा हुआ।

– कैसे?

– कुत्तों ने बिल्लियों को भगा दिया। बिल्ली के भाग जाने पर मूसे बढ़ गए। मूसों ने छत्ते नष्ट किए तो मक्खियों ने गांव छोड़ दिया। गांधीजी ने आश्रम में सांप मारने से मना कर दिया था, क्योंकि इससे सांप कम होंगे और मूसे बढ़कर फसल नष्ट कर देंगे।

– हां, बेटे! विश्व में किसका किससे संयोग है कौन जाने। जिस संयोग में सब गुंथे हैं, उसे पकड़ने में विज्ञान कहो, साहित्य कहो, सब चेष्टा कर रहे हैं। बात है कि वह सूत्र प्रेम का है या हिंसा का, अथवा बाहर हिंसा दिखता है और भीतर प्रेम!

– जो भी हो। इस जात के मूसे साहसी हैं, बुद्धिमान भी और आक्रामक भी। उसका बिल घर के पास ही होगा। ये अपने खाद्य स्थल से दूर रहते हैं। सुरंग बना लेते हैं। घर की ईंट-सीमेंट की दीवार-फर्श सबमें छेद कर सकते हैं ये।

विजय अचंभे में सुनते रहे। तभी अनुपमा ने कान में कहा, "टुना (विजय का मझला बेटा। दसवीं में है। विज्ञान उसे प्रिय है) किताब खोल पढ़ रहा है। तुम्हें कुछ कहना चाहता है। तुम टुना की बात पर खुश होते हो, अतः उसका मन फीका पड़ गया। वह कुछ कहने को बेचैन है। बुलाकर पूछो।"

विजय खुश! गर्व भी लगा कि बेटे स्नेह से कितने उत्सुक हैं। पर हर बात में दोनों में कंपीटीशन होता! कभी-कभी मार पीट कर बैठते। वह कुछ दब गया। अपने अंदर कुछ ईर्ष्या और घृणा हो आई। उदास हो गया। कोई क्या करे! सच तो सिर उठाकर कहेगा कि घृणा का नाश और उत्तेजना को आछन्न करो। इस गलनशील सहज दाह्य देह को सुखी रखने में आदमी जितना व्याकुल है, स्नेह और प्रशंसा

के लिए वैसे ही तरसता है। जरा-सा महत्व पाने को विकल हो जाता है। सब कहें कि मेरे बिना काम न चले। फिर यह तरस बढ़कर वीभत्स लालसा का रूप ले लेती है। आदमी को कितना क्रूर व निर्मम बना देती है। आदमी प्रधान बनने को पागल हो जाता है। मैं ही प्रधान बना रहूं। दूसरा सिर उठाए—यह वह सह नहीं सके। अपने क्षेत्र में हो तो कोई बात नहीं। मन में षड्यंत्र भर जाए। सदा षड्यंत्र रचता रहे कि कैसे अपने को औरों से बड़ा प्रमाणित करूं। वह जाते समय सब कुचक्र रचे। अचंभे में भर उसे देखे...यह दिवास्वप्न जिस तरह की मानसिक उत्तेजना पैदा करता है वही है कर्म प्रेरणा। इसी से जन्म लेता है औरों के प्रति स्नेह, दया जो झूठ होने पर भी सच-सा लगता है। फिर कुत्सा से लेकर हत्या तक कई कुकर्म—इस प्रेरणा में खिंच आते हैं। वैसे देखा जाए तो इसके मूल में है वह दयनीय प्रवृत्ति...मैं कैसे सुरक्षित जी सकूंगा और इसके लिए कैसे सबसे सहायता पाऊंगा। वह औरों का सुख, यश, क्षमता, प्रशंसा सुने या देखे तो अपनी स्थिति पर विपद समझे और विकल हो उठे। अपनी सुरक्षा हेतु वह धन, मान, क्षमता, औरों से स्नेह वृद्धि कर दूसरों को निगलने को व्याकुल होता है। सबकी खुशामद करे कि सिर्फ मुझे उठाओ। जबकि साधारण आर्थिक सत्य भी वह देख नहीं पाए कि सब सुख से रहें तो उसका जीवन सुरक्षित व शांतिपूर्ण होगा। उल्टे औरों के दुःख में उसे विपद होगी। दूसरों का धन, मान, क्षमता बढ़ने पर मन नहीं माने। कितनी पीड़ा। कितनी!

विजय को सचमुच छाती में पीड़ा होने लगी। वह छाती सहलाने लगा। मानो अंधेरे में बड़े लोमश बिच्छू की तरह कुएं में गिर पड़े हों। वहां से निकलकर बाहरी दुनिया, आदमी, पेड़-पौधे देख नहीं सकेगा। कोई जान न सकेगा कि ऐसे कुएं में गिर पड़ा है जिस आदमी पर अपना प्रभुत्व फैलाने को वह व्याकुल है, उसे हाथ जोड़ वह कहता—गुसांई, उठ तो न सकूं। यहां से उद्धार करो, मैं इतना ही कहता।"

आदमी की हजार नीचता पर भी उनका चेहरा खूब सुंदर दिखे। हरेक में ईश्वर का प्रकाश अधिक देख स्नेह की मांग करने लगे। खूब उदार और आराम लगे। मन ही मन चीखे—हे बहनो अपने में, औरों में, काम क्रोध, लोभ, हिंसा, अहं देख भय न करो। चिंता न करो। क्रुद्ध न होओ। सब एक दिन चला जाएगा।—उन्हें लगा अचानक कोई अलौकिक उपाय से कुएं से उबर आए हैं। कैसा आनंद है!

अचानक आलोक पाने की तरह मन ही मन कहा—ओह! समझा। इससे मुक्ति का एक ही उपाय है—प्रेम! मानो वह प्रेम पा गए हों। पूरी मानव जाति, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, हर धूल कण के प्रति सिर झुक गया। मन ही मन स्तवन किया:

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूत विशेष संघान्...

...अब शायद मेरे मन में सारी ईर्ष्या, स्वार्थ, प्रभुत्व की लालसा खत्म हो गई। यह सोच मन में साहस आ गया। खुद को परखते हुए मन में कहा—अच्छा देखें, मैं ओक्टोपस को प्रेम करता हूं या नहीं। मन ही मन ओक्टोपस की बात सोचने लगे...एक गोल नरम सफेद मांस पिंड...उसमें दो बड़ी-बड़ी काली-काली आंखें...सदा खुली...पलक नहीं, उस मांस पिंड से निकले हैं आठ पांव...लंबे-लंबे, दोनों ओर कई छिद्र...उधर से शिकार का रक्त चूस ले, मांस पिंड तैरता जा रहा। आठों पैर आठ दिशा में फैले हैं। खोज रहे हैं शिकार। एक उनकी देह से टकराया...आठों ने कसकर दबोचा। घृणा व भय में सिहर उठे। रोंगटे खड़े हो गए। विजय हताश हो गए। ना, नहीं हुआ। इतनी दूर...इतनी जल्दी नहीं होगा—तर्क किया...ओक्टोपस के प्रति प्रेम क्यों होगा...। अच्छा देखा जाए, मैं इसे सबसे ज्यादा ईर्ष्या करता हूं। उसका बेटा खेल-कूद, पढ़ाई में प्रथम आकर विख्यात हो गया—सुनकर मुझे कैसे लगता है। उसके पिता जो आनंद पाए, मैं उसमें खुशी होऊंगा? सोचते ही खटका लगा। किसी तरह खुद को उसके पिता के आनंद में मिला न सके। मन में प्रतिवाद भर गया।

विजय कुपित हो गए...साधारण तत्व पर सोचा—सर्वे भवंतु सुखिनः कहना उदार प्रशांत लगता है। पर व्यक्ति में आने पर जैसे का तैसा...क्यों...मानो मन में किसी ने कहा—यह आसानी से मिलने वाला धन है। उसमें कुछ भी पकड़ सको तो पकड़ो...। कम्यूनिज्म जरूर ऐसा कर सकेगा, जो समाज में जोर-जबरन समता लाकर सामाजिक ऊंच-नीच भेद उठाकर, जीवन-यापन सुरक्षित कर आदमी के मन में प्रेम लाने की चेष्टा करता है।

पर मन ने कहा—यह तंत्र है! तंत्र में देह पर जबरन मन का निर्विकार भाव और प्रेम संचार करने की चेष्टा की जाए—मांस खाकर निर्विकार रहना, आधी तुलसी और आधी हाड़ों की माला का जाप कर सब तुल्यमूल्य भाव लाना, नारी की तरह गहने पहनकर केवल भगवान को ही पुरुष और बाकी सबको प्रकृति या नारी—बतलाना (क्योंकि हर प्राणी जाने-अनजाने उन्हें पाने को व्याकुल रहता है), दरिद्र की तरह जीवन यापन कर न्यून भाव लाने की चेष्टा करना, मानो साहित्य में तंत्र—मिनी साहित्य (तांत्रिक मंत्र ह्रीं क्लीं फट् आदि की तरह साहित्य में अर्थ गुप्त रखने का एक एक्सपेरिमेंट है) में भाषा चातुरी, जोरदार दुर्बोध्यता, कठिन उपमा, आदि से साहित्य को भावमन बनाने की चेष्टा करना, समाज पर जबरदस्ती समता के भाव पैदा करने की कोशिश करना है।

...इससे क्या होगा? श्रीरामकृष्ण ने कहा है—तंत्र की राह पर चलना, पैखाने की राह घर में आना है। जबरदस्ती नहीं, देह की राह मन तक न जाकर मन की राह देह में आना है...यह चेष्टा तो बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य, रामकृष्ण, गांधी, श्रीअरविंद, यहां तक कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—सफल हुए हो या नहीं—वे

भी कहते है।...देह पर कुछ जबरदस्ती जरूरी है। पर आदमी तो बदला नहीं। तो क्या मांग और स्वार्थ के संघर्ष में आदमी खुद समझेगा कि परमार्थ पाना ही स्वार्थ सिद्धि का एकमात्र आनंदमय व सुरक्षित राह है...मार्क्स ठीक है और बाकी सब गलत...पर बुद्ध आदि के कारण आदमी कुछ नहीं बदला...

विजय जिस राह जाएं। कुछ दूर जाकर पाएंगे अंधी गली। और कोई राह नहीं। लौटकर दूसरी राह लेते तो फिर वही अंधी गली। विजय को हताशा लगी। खीझकर कहा—चल साले, जैसा चले, चल।

अचानक सुनाई पड़ा—अरे मैंने जो कहा तेरे कान में ना पड़ा। ओ मां, यों टिमटिमाकर क्या देख रहे हो। अरे मुंह सफेद दिख रहा है! मैं क्या करूं? कुछ खयाल आ रहे हैं क्या? पहले काम कर लो। बेटे को कहना जो मैंने बताया।

विजय को होश आ गया। वे खयाल हटा दिए। बेटे को बुलाकर कहा—टुना! तूने जूलाजी पढ़ी है। बता क्या जानता है?

पर मन में फिर तर्क आ गया। अनुपमा ने अनजाने में कहा—कुछ करो। बैठकर तर्क न करते रहो। माओत्से तुंग ने इंटलेक्चुअलों को बार-बार कल्चरल रिवोल्यूशन के नाम पर खत्म किया है। पर...चुप, वे...चुप...इधर तर्क, उससे... खटखट...बात पर बात...इसने यह कहा, उसने वह कहा! तू क्या कहता है बोल।...मेरा हाथ थाम ले प्रभु! मैं कुछ न जानूं! पर...चुप...क्यों चुप रहूं...बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य, मार्क्स, गांधी, माओ की तरह मैं...हूं...औरत कहती है—चिंतन कर...काम कर...चिंता कोई काम ही नहीं...पहले चिंतन...वरना तेरी तरह अंधेर नगरी का काम...दिन में हजार बार आलमारी की चाबी गुमती है, चाबी की तलाश जारी है, बच्चों को गाली...मैं चिंतनशील आदमी...कुछ समझ नहीं आता...किसी ने कहा—वेद वाक्य बन गया!...मैं न मानूं...हर शास्त्र या ज्ञान आखिरी बात नहीं कहता। फिर आदमी की बुद्धि का विकास न होता...एक को थामकर उसे ही बड़ा कहकर प्रचार करना अपना क्षेत्र बढ़ाना है। गीता में कहा है—शास्त्र में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं, पर तू अपनी बुद्धि से समझ...कम से कम मेरा मन यों चुप रहने वाला नहीं...मैं किसी का पिछलग्गू नहीं हो सकता, भगवान का भी नहीं...मैं...मैं...

विजय हांफने लगा। पारा चढ़ गया। कान लाल पड़ गए। फिर भी तर्क करते रहे। वे नहीं, उनका मन खुद ही तर्क करता रहा, यह मन किसी और का हो। मानो कोई जबरन अंदर आकर उन्हें कोई सूक्ष्म तर्क दे रहा हो। विजय चेष्टा कर भी उसे भगा नहीं पा रहे। पढ़ाई के दिनों में 'मन कहता मेरा कहा मान' अथवा 'पगले मन को बांध रे बाबू', समझ नहीं पाते थे। अपने मन को क्या मनाएं? सोचते कि ये तो साहित्यिक चातुरी है। अब समझे कि इंद्रियज या अहं से जन्मा मन अंदर है, पर एक मन अलग है। बहुत जिद्दी है। उस पर जोर न चले। समझकर भी वे रोक न सके। तरह-तरह से वह अंदर आकर सिर उठाता है। खूब जरूरी

हैं—पर पूछा अंदर से या बाहर से? प्रश्न लुभावना है। अपनी बुद्धि से समाधान के लोभ में पड़ गए। तर्क करने लगे। गडमड होने लगे। मन क्लांत हो गया। तर्क का तांडव! शांत हो तब गीता वाली बुद्धि आती। कुशल की तरह काम करता। विजय का मन तर्क करता। हर बात का खंडन। इधर वह किसी सिद्धांत तक पहुंच शांति के लिए छटपटाता।

भाग्य से टुना ने उद्धार किया। बहादुरी दिखाते हुए चीखा—बापू...कहीं से भी यह मूसा छलांग लगाकर उठ सकता है। हिसाब कर...

विजय ने सुना...मूसा भी जीना चाहता है...इसके भी प्राण हैं...सबका जीवन मिलकर एक अखंड विराट जीवन स्पंदन हो रहा है...एक पल विराट के आगे खड़े हो अपनी क्षुद्रता का अनुभव कर चैन आया।

टुना कह रहा था, "हिसाब कर देखा गया है कि इस किस्म के मूसे साल में हजार करोड़ रुपए की फसल नष्ट करते हैं। गवेषणा से पता चला कि कहीं एक दिखा आसपास 500-1000 हैं।

विजय को बात छन से लगी। आतंकित होकर कहा, "तो इसका अर्थ है कि इनके कारण धरती पर अकाल पड़ेगा। मानव जाति धरा से लुप्त हो जाएगी इन अधमों से!"

तभी छोटे बेटे के आहत गाल पर नजर पड़ी। वहां घाव हो गया था। जीवन तत्व की बात सोचकर जिस साम्य भाव का संचार हुआ था, वह हटकर मूसा पर घृणा और क्रोध हो आया। दांत रगड़कर कहा, "इतना अत्याचार मुझ पर किया, इतनी मुश्किल से बेटे के लिए छेना रखता हूं। कभी चींटी न घेर लें। कभी तिलचट्टे न जूठा कर दे, पर स्साला ये मूसा हैरान करके रख दिया, मारूंगा, जरूर मारूंगा। तभी आत्मा को तृप्ति मिलेगी।

शाम को कचहरी से लौटे, राह में सात रुपए में खरीदा बड़ा-सा जन्ता। जन्ता के दो और पैने दांत। किस कलाकार ने ऊपर की तरफ दो बड़ी-बड़ी आंखें, नीचे छोटी नाक और नीचे बड़ी घनी मूंछ आंक दी है। जन्ता खूब सजीव तथा भयंकर दिखता है। विजय चुनकर लाए हैं। मुंह में छोटी कटोरी। घर में सबको दिखाया कि जन्ता कैसे काम करता है। छोटी कंकरी लाकर कटोरी में रखी। पल भर में कें-कें कर दो दांत वाली स्प्रिंग ने जाकर कस लिया। दोनों दांतों के बीच दतौन रखा था—कटकर दो टुकड़े हो गए। विजय ने गर्व से सबको देखकर कहा—यह सबसे अच्छा जन्ता है, पूरे बाजार में खोज कर लाया हूं।

रात में खाने-पीने के बाद जन्ता को रसोई में रखा गया। विचार के बाद तय हुआ कि छेना मूसा का प्रिय खाद्य है, कटोरी में छेना ही रखें। छेना पांड़ पीठा के किनारे को खाते देखा था, उसे ध्यान में नहीं लिया। पर अनुपमा ने मोनालिसा की तरह रहस्यमय मुस्कान में कहा—लगता है मूसा छेना नहीं खाएगा।—विजय

ने उस पर खीझकर देखा। अपने फैसले पर दृढ़ रहे।

मूसा जन्ता में पड़कर दो टुकड़े होकर छटपटा रहा है। यह तृप्तिदायी दृश्य देखने हेतु नींद नहीं आई। तीन बजे जन्ता की विकट आवाज सुनकर विजय जन्ता की आवाज कर खुशी में दौड़े। सब जाग उठे।

वहां देख सब जड़ बने रह गए। जन्ता का कसाव था, पर मूसा नहीं। छेना नीचे बिखरा था। थाक पर बैठ मूसा कुतर-कुतरकर पीठा के किनारे खा रहा था। निरासक्त भाव में सबको टुकुर-टुकुर देख रहा था। जन्ता दांत दिखाता मुर्दा-सा पड़ा था। आंखें मानो भय से फैल गईं और मूसा को देखती रही। अब लगा कि कलाकार ने ऐसे बनाया है कि ग्राहक को ठग ले। जन्ता पर गुस्सा आ गया। एक ठोकर जन्ता पर मारी। एक बाल्टी उठा दे मारी मूसा पर। मूसा कूदकर छू। बाल्टी छिटककर छोटे बेटे के सिर पर लगी। खून निकल आया। विजय की आंख में आंसू आ गए।

बेटे का सिर धोया। थोड़ी-सी चोट थी। विजय कुछ शांत हुए। जन्ता की बात दुर्भेद रहस्य-सी लगी। जन्ता का कसाव पड़ा होगा, मूसा छेना खाने ऊपर उठा होगा, तो छेना कैसे नहीं खाया? कसाव में कैसे नहीं आया। फिर अलौकिक बात में आ गया।

पर सुना ने कहा, "नहीं, बापू! ताज्जुब की कोई बात नहीं। ऐसा होता है कि ऐसे मूसे ठोकर मारकर कसाव को गिराकर कटोरी से खाद्य खाकर चले जाते हैं। ये बहुत अकलवान हैं।

—तो छेना क्यों नहीं खाया उसने?

बेटे ने कहा—वो मैं नहीं समझ पाया। अब तक तो छेना खाता था। कुछ दिन से छेना छोड़ पीठा क्यों खा रहा था, किताब में इस पर कुछ नहीं लिखा है।

अनुपमा ने मुस्काकर विजय को देखा, बच्चों से आंखें बचाकर अपने पेट पर हाथ रखा। संकेत कर दिया कि मूसी गर्भवती होगी। ऐसे में सख्त चीजें खाना चाहती होगी। मैं उन दिनों चूल्हे की माटी खाती थी। हर मां समान होती है।

अनुपमा में एक अपूर्व आभा देख विजय अवाक रह गए। लगा, अवस्था क्रमशः जटिल हो रही है। म्लान हो मुस्काकर कहा—तो यह मूसा नहीं, मूसी है। यह मूसी मां बनने जा रही है!

अपनी बस्ती की आवारा कुतिया मां होने चली तब की सारी बात याद आ गई। उसे अनुपमा रोज खाना दिया करती थी। खाने के समय दरवाजे पर खड़ी हो कूं-कूं करने लगती थी। अनुपमा भात रख आती। खाकर चली जाती। वह अपनी कुतिया बन गई। उसे बच्चों ने नाम दिया—काली। 'काली-काली' कह आवाज देते, जहां होती, दौड़ी आ जाती। पांवों में लोट जाती। कुछ दिन बाद बच्चे जने। बच्चों को घर के सामने छोटी पुलिया के नीचे छुपाकर अलग-अलग रहती। ठीक

समय पर पांच बार आकर कूं-कूं आवाज देती। बच्चे कुलकुल कर बाहर निकल आते। मां के पेट पर चिपककर दूध पीते। कुछ समय बाद वह उन्हें धकेल देती। बच्चे उठकर वापस पुलिया के नीचे चले जाते। बच्चे कुछ बड़े हुए और खाना सीख गए। वे उसके दिए भात घेर लेते। काली नहीं खाती। कुछ दूर बैठी देखती रहती।

याद आते ही विजय को लगा, जैसे मैं महासागर में पड़ गया हूं। किनारा ही नहीं मिले। इतने जीव हैं। सबकी सोचें तो जीना मुश्किल हो जाएगा। अपना स्वार्थ सबको रास्ता दिखता है। स्वार्थ एक ठोस खूंटा है। उसे कसकर थामे रहने से निश्चिंतता आती है। छोड़ दो तो सागर। किस साहस से सागर में कूदें? क्या है मेरा सहारा? कैसे महापुरुष महासागर को निश्चिंत समझते हैं, पता नहीं।

विजय की आंखें आतंक में फैल गई। क्रोध चरम हो गया। सांस तेज। दांत कटकटाने लगे।...ये मूसी साल में देगी चालीस बच्चे...आसपास होंगे नौ नौ मूसे।...ये देंगे चालीस गुना नौ सौ बच्चे...शून्य...धत्...अरे लाना तो कलम कागज छिः...जबानी हिसाब करने में क्या बुराई...भगवान आपके...कुछ सहज में नहीं मिलेगा...ऐसे नियम कि जरा-सी बात के लिए श्रम...मेरे लिए सारे नियम कठोर...मुझे गरीब जानकर...ऐसे क्या काम करते हैं...

टुना ने कहा—साल में छत्तीस हजार! बच्चे!

—छत्तीस हजार! और फिर वे छठे महीने होंगी गर्भवती! उन्हें गुना करो चालीस से।

मन में हिसाब करते-करते आतंकित हो गए। गुणनफल सोचकर सिहर गए।...ये हमारा हजार करोड़ रुपए का अन्न हमारे मुंह से छीन लेते हैं—इसमें संदेह कहां रहा? कितनी मेहनत कर पैदा करते हैं, और ये मुफ्त में मार लें...अपने रोगी बेटे को जरा छेना खाने को देता हूं...इन्हें जरा भी दया नहीं आती...दुनिया भर का अभियान इनके विरुद्ध चल रहा है...उसमें सहयोग क्यों नहीं करता हूं? बेवजह अखंड जीवन प्रवाह की बात सोच रहा हूं...

दांत पीसकर कहा—जन्ता में न मरा, जहर दे मारूंगा। आज ही लाता हूं।

विष लाया गया। रात में दो सख्त-से पीठों में विष लगाया। अगले दिन विष वाले पीठे वैसे ही थे। पीठा के बरतन से दूसरा पीठा लेकर खा रही थी। सुना ने कहा—मैंने कहा था न कि ये अकलवान हैं। कहां किस खाने में कैसी गंध है, पहले जान लेते हैं। जरा अलग गंध मिली तो नहीं छूएंगे।

विजय को ताज्जुब हुआ।...एक मूसी ने परेशान कर डाला हमें! पीठा तो खाया, अब बेटी की कीमती साड़ी, अनुपमा की देवी की सिंदूर से बनी आंख, चमड़े का सूटकेस काट डाला! अनुपमा का कहना है—इस अवस्था में यही होता है! मारूं...मारूं...मारूं!

पहली बार विजय ने देखा किधर से मूसी अंदर आती है। रसोई में लकड़ी

के ढेर के नीचे काठ की संदूक में तीन छेद हैं। 'मित्रलाभ' कहानी वाले हिरण्यक मूसिकराज की बात पढ़ते समय मूसे की बुद्धि पर मजा आया था। जमीन में से सौ रास्ते खोद लेता था। शत्रु एक राह आते तो वह दूसरी राह चला जाता। शत्रु गोरखधंधे में छटपटाए। अब अपने घर में यह सब देख आग लग गई। कचहरी से छुट्टी लेकर दिन भर चौकस रहे। छेदों में विप रखकर ईंट के टुकड़े से बंद कर दिया। रात में अन्य नाले भी बंद किए। रात में खड़खड़ाहट सुन दौड़े। देखा—मूसी पैखाने में बेसिन के छेद से होकर भाग रही थी। निकलते समय मुंह निकाल विजय की ओर नाक फुलाकर देखा और गायब हो गई।

अगले दिन कचहरी से लौटे तो रास्ते में मित्र के यहां से पालतू बिल्ली लेते आए...बचपन में पढ़ा था—'बिल्ली आई। मूसा भगाई'—पक्का मान लिया था। पर रात में देखा तो अचंभे में पड़ गए। रसोई में थाक पर चढ़कर बिल्ली छेना खा रही थी! कुछ हटकर मूसी भी छेना खा रही थी। बीच-बीच में दोनों एक-दूसरे को देख रहे थे। मानो सुख-दुःख बतिया रहे हों।

किमाश्चर्यम् अतः परम्।

सुना ने कहा—बापू, बाघ, सिंह, बिल्ली जन्म से शिकारी जंतु नहीं होते। बच्चे को मां शिकार न सिखाए तो शिकार नहीं कर पाते। पालतू बिल्ली शिकार नहीं कर पाती। नहीं जानती कि मूसा उसका खाद्य है।

विजय अभिभूत थे। कैसी है मां रूपी प्रकृति! काली कुत्ती की याद आ गई। कुछ दिन पहले एक बात देख घृणा हो गई। काली अपने साल भर के बच्चे को रमण के लिए उकसा रही है। बच्चा काली पर आता कि वह चल देती। कैसा भयंकर दृश्य था! श्रीरामकृष्ण की बात याद आ गई—शाम को गंगा किनारे टहल रहे थे। देखा—गंगा में से एक सुंदर युवती किनारे आ गई। गोद में नन्हा-सा सुंदर बच्चा है। कुछ समय बच्चे को लाड़ किया। फिर कमर से छुरी निकाल शिशु की छाती में भोंक दी। गंगा में शिशु को फेंककर निर्विकार भाव से खिलखिलाती गंगा में चली गई।

विजय मन ही मन रवींद्रनाथ की कविता दुहराने लगे—अपना विस्तीर्ण पथ रखा है, अकीर्ण कर, विचित्र छलना जाल में तू है छलनामयी!—विजय का मन हताशा में उदास हो गया। मूसी मारने का संकल्प उन्होंने छोड़ दिया। बिल्ली लौटा दी। आज एक जालीदार आलमारी ले आएंगे। उसमें खाद्य पदार्थ रखेंगे। सबको कह दिया—मूसी के बच्चे देने तक चीजें सावधानी से रखी जाएं।

कुना दौड़ा आया—बापू...चंचली ने बच्चे दिए।

विजय को अचंभा हुआ—चंचली कौन है?

कुना ने कहा—अपनी मूसी का नाम चंचली रखा है।

मूसी को मारने की बात पर इतना जान गए कि इस बीच मूसी पर सबको

मोह हो आया है। उसका नामकरण हो गया! मानो वह भी परिवार का सदस्य है। विजय ने पूछा—कहां दिए हैं?

कुना ने कहा—आपका फटा कोट अलमारी में टंगा है, एक जेब में वहीं चूं-चूं कर रहे हैं। सात बच्चे हैं!

सबने जाकर देखा। तय हुआ कि चंचली रात में आएगी। उसे दबोचकर पिंजरे में रख देंगे—सातों बच्चों सहित।

एक पिंजरा खरीदा गया।

रात में बाथरूम में एक सूं-सूं आवाज सुनी, उधर गए...देखा ढमना सांप फन उठाए फुफकार रहा था। सामने चंचली स्थिर बैठी कांप रही थी। रोशनी में वह दृश्य चमक रहा था। सांप धीरे-धीरे हिल रहा था। स्थिर दृष्टि से मूसी को देख रहा था। मन ही मन भगवान को कह रहा था—धन्य है विधाता!—तेरे सिवा आसरा नहीं। आहार दिया था।

बच्चे धम-धम कर रहे थे, पर पास जाने का साहस नहीं था। विजय को कह रहे थे—मार डालो सांप को। मगर छोटे बेटे की आंख में पानी था।

विजय स्तंभित होकर सोच रहे थे—क्या करें? महाभारत की एक कहानी याद आ गई—दो महातपी योगी थे। तप का प्रभाव इतना प्रखर था कि नहाकर गीला कपड़ा आसमान में लटका देते सूखने। कपड़ा गिरता नहीं। एक दिन तप करने बैठे, सामने देखा बिल्ली मूसे को मारने दौड़ी। पहला योगी व्यथित हो गया। बिल्ली से छुड़ा दिया। इसमें तप का प्रभाव नष्ट हो गया। अधर में टंगा कपड़ा गिर गया। दूसरे योगी ने सोचा—बिल्ली को प्रकृति द्वारा दिए गए खाद्य से वंचित करना अन्याय है। मूसा को लाकर बिल्ली के पास छोड़ दिया। उसका भी कपड़ा गिर गया।

क्या करें...न करें...इस बीच सांप ने मूसी को पकड़ा। देह उल्लास में झूलने लगी। सांप के मुंह में मूसी चीख रही थी। मानो कह रही हो—मेरे बच्चे हैं, तुम सम्हालना...

सांप मुड़कर नाली से निकल गया। सबकी आंखें छलछला आईं। छोटा बेटा मां की गोद में फफक उठा। सबकी आंखें भर आईं। एक-दूसरे की पीठ पर हाथ रख ढाढस देने लगे, "ये दुनिया ऐसी ही है।"

विजय ने गहरी सांस लेकर कहा, "काल सर्प आपके अधीन प्राण।" मगर तभी मन में भाव आया—शत्रुनाश की तृप्ति भी मिली है।...जा ससुरे, इतने दिन में अब...।

कुना ने उन बच्चों को एक कागज के बक्से में रुई की गद्दी पर रखा। कुछ दिन में बच्चे मर गए। विजय को दुःख से ज्यादा बच्चे पालने के दायित्व से मुक्ति में तृप्ति हो रही थी। वह तृप्तिहीन लगा तो पश्चात्ताप हुआ। फिर यह पश्चात्ताप तो कमजोरी है। उसके खिलाफ विद्रोह हो आया। बीच में अज्ञात व्यथा उठने लगी।

विजय ने सिर पर हाथ रख सोचा—उफ कितना जटिल है यह जीवन! कैसी अजीब है यह जटिलता! पल-पल अजीब है। बाहर अनेक बातें हैं। फिर अंदर उतनी ही बातें हैं, किसी का किसी से संपर्क नहीं। सब घुल-मिल जाता है। मिल जाता है अपने अहम के अनुसार, जो अहम सब ढोता चल रहा है...चल रहा है...उस गुरुभार को फेंक एक ओर पाने की इच्छा है...कैसी अजीब बात है...रे बाबा!!

पक्षाघात

दुर्योधन अब हमेशा बाहर बरामदे में रखी खाट पर दीवार से टिके रहते हैं। पीठ पर चीकट भरा पुराना तकिया है। आकाश की ओर ताकते पान चबाते रहे। बोलने की भी शक्ति नहीं रही, उठ भी न पाते। पक्षाघात हो गया था। कभी किसी की इच्छा हुई, तो एक पान दे जाता है। तकिया ठीक कर जाता है। अथवा कुछ खाना दे जाता है। घर के सब खीझ में भरे हैं। परिवार के औरों के संग हल्का-सा दैहिक संबंध है, मगर मानसिक संबंध नहीं रहा। धनी और पश्चिमी सभ्यता के पुजारी परिवार में इस युग में घर का कौलिक देवता बहिष्कृत नहीं होता, परित्यक्त रहता है।

पचपन की उम्र में ही रिटायर हो गए। तीन दिन बाद यह हालत हो गई। तीस साल की नौकरी करने के बाद पेंशन पाई। नौकरी निचली सीढ़ी पर शुरू की, अंत में काफी ऊपर उठ गए। क्षमता, अधिकार, सम्मान और अर्थ नौकरी में खूब मिला। मगर रिटायरमेंट के समय वे रो पड़े। पेंशन के बाद ऐसा लग रहा था जैसे अईठू साहू अथवा निधि मलिक में और उनमें कोई फर्क ही हो। जिस कचहरी में वर्षों वे हाकिम रहे, सलाम पाते रहे, आज वहां जाने पर कोई खड़ा भी नहीं होता। उधर कोई नहीं देखता। किसी ने जानबूझकर अपमान किया हो ऐसी बात भी न थी। मगर उनका सम्मान तो पदवी से जुड़ा था। उससे हटकर कुछ भी न था। अब पद से हटकर साधारण आदमी थे। कचहरी से यों ही घूम-फिरकर लौटे, मन व्याकुल हो गया, सोचा—तो मैं अब क्या हूं? क्या है परिचय मेरा? सारा परिचय अतीत! रिटायर्ड! बेचैन हो बिस्तर पर लेटे चारों ओर देखते रहे। आंखें छलछला आईं। किसी ने आवाज दी, परिचित स्वर था—सा'ब सलाम!—वे हड़बड़ाकर उठ बैठे। देखा कोई नहीं था। तब लगा—मैं रिटायर्ड कर्मचारी हूं। साथ में कोई नहीं। न कोई मिलने आने वाला है। न सलाम देने वाला। बिस्तर पर वे लेटे रहे।

दो दिन में स्याह पड़ गए। तीसरे दिन दोपहर में निकले। पांव फिसला। उठने की चेष्टा की। पैर में ताकत न थी। बुलाने की चेष्टा की, आवाज न थी। होंठ थरथराकर रह गए। आंख से आंसू बह चले। सरकार ने तीस वर्ष में सब चूस लिया। एकदम निचोड़ डाला। कंगाल कर दिया। जो महीने में पांच हजार

कमाते थे, वे आज दो कौड़ी के न रहे।

घर पर तब कोई न था। दूसरी पत्नी से उम्र का फर्क पंद्रह साल का है। विवाह के समय लाजवंती, देहाती कायदे वाली थी। एक पलंग पर सोते समय भी पड़ी रहती निस्पृह होकर, काठ बनी। दुर्योधन ने उसे नई बना डाला, देह और मन दोनों से। आजकल वे घर पर कम रहती हैं। कार लेकर इधर-उधर कई काम से घूमती रहती है। देर रात गए कई बातें कहकर घर में आती हैं। किसी ने कहा, शायद मोपासां ने कहा है—नारी की सुप्त अभिलाषा जगाना अनुचित है, एक बार जागे तो रोकना मुश्किल। इसकी सचाई तो सात्विक जन ही कहें, पर एक दिन दुर्योधन के साथ इस पर बहस हो गई। खुद कहा—किसने मुझे बाहर निकलने को कहा? सबसे मेल जोल की बात, मद की बात किसने कही? अब क्यों भागवत सुना रहे हो? तुम बूढ़े, मैं बूढ़ी। मुझे सिर्फ पुत्रार्थे क्रियते भार्या बनाते तो बात और थी। तुमने तो मुझे बनाया ही ऐसी...! तुम बूढ़े हो, पर मैं नहीं। तुम्हें कहा था न—नारी की इच्छा...समझ लो, सम्हाल नहीं सकोगे दुर्योधन बाबू!

बेटे तीन हैं। जीवन क्षणिक है, परंतु जीवन प्रवाह तो चिरंतन है। अमर है। पिता-माता संतान उत्पन्न करें। फिर वे एक दिन मां बाप बनें, संतान पैदा करें। जीवन प्रवाह निरंतर चलता रहे? मृत्यु अमर रहे। पुरुष-स्त्री का प्रेम भी नियम का प्रकाश भर है। पिता अमर होता है पुत्र के जरिए।

पर अमरता है क्या? सिर्फ जीवन के बाद दैहिक सृष्टि? मैं क्या अपने बेटों के माध्यम से अमर हो सकूंगा?

वे उस पुराने तकिए के सहारे टिके सोचते रहे। पान कब से खत्म हो चुका था। और देने वाला पास में कोई नहीं था। संकेत में भी किसे कहें? अट्टालिका-सा घर बनाया है। मगर पड़े हैं गुहाल के पास वाले बरामदे में। पत्नी घंटे भर से तैयार हो रही है। बाहर जाना है। ड्रेसिंग रूम से गुनगुनाहट आ रही है। लेवेंडर महक रहा है। कुछ समय बाद देह की मांसल तरंग बिखेरती हुई बैग हिलाती चली गई। उनकी तरफ एक बार देखा भी नहीं।

मानसिक पीड़ा में वे थर्रा गए। चीखना चाहा, मगर...कुछ नहीं, सिर्फ गं...गं...कर रह गए। तभी बड़ा बेटा अंदर आया। दुर्योधन मन ही मन मुस्का उठे। तो नेताजी आ गए हैं।

दुर्योधन का बड़ा बेटा नेता बन तो नहीं पाया है, उस ओर आगे बढ़ा रहा है। तरह-तरह के हथकंडों से पैसे कमा लिए हैं, कमा रहे हैं। पेंच, कूटनीति लगाकर नेतागिरी में छलांग भरते जा रहा हैं।

उसके पीछे-पीछे दो-तीन और आ गए। एक हाथ में कैमरा लिए हैं। दुर्योधन की ओर मुस्काकर देखा और पांव सहलाने लगा। अचानक यह परिवर्तन कैसे? कृतज्ञता में आंखें भर आईं। उसके बाद मुस्काकर कहा—चलता हूं, बापू! कोई तकलीफ

तो नहीं?

दुर्योधन ने सिर हिलाकर कह दिया—ना...ना!

सब चले गए। पितृभक्ति का फोटो उठाने आए थे!

यह मेरा बेटा, मेरे ही चरित्र की एक दिशा की मूर्ति है। मैं जब तरह-तरह के गलत तरीकों से नौकरी में पैसा कमाता, ऊपर उठता था, यह बेटा उन्हीं दिनों का है। मेरे गुप्त चरित्र की प्रकट मूर्ति। इसका कोई दोष नहीं। कसूर मेरा है। फिर दुर्योधन की आंखें चू पड़ी। फिर गं...गं...कर उठे। अस्थिर हो सिर इधर-उधर करने लगे।

तभी मझला बेटा आया, लड़खड़ाता हुआ, हाथ में बोतल लिए। पिता को देख साष्टांग प्रमाण कर रो पड़ा। कहने लगा—आज सुबह से सिर्फ एक ही बोतल ली है, और है, थोड़ी लेंगे? काफी आराम मिलेगा। दुर्योधन वैसे ही आंख टिमटिमाते देखते रहे। बेटा अनुरोध कर रहा था—थोड़ी पी लें। दुर्योधन ने सिर हिला दिया। बेटा अट्टहास कर लहराता चला गया।

दुर्योधन सोचने लगे—यह मेरे चरित्र का एक और प्रकट रूप है। मैं भी घर में सबके सामने पेग लेता था, नशे में आ जाता था। एक दिन कहा—ड्रिंक में बुराई नहीं। पूरा परिवार मिलकर हर जगह पीता है, बेटे के रूप में वही मैं दिख रहा हूं।

दुर्योधन गं...गं...कर उठे। हाथ उठाया। किसी को पकड़ना चाहा। पर पकड़ न सके। पीड़ा में छटपटाने लगे। अपने हाथ से अपना गला भींचना चाहा। मगर न भींच सके। इतना बड़ा घर। सुनसान। यहां पर कोई नहीं। सब अपने-अपने धंधे में चले गए हैं। लौटेंगे रात देर गए। तब तक एकाकी। एकदम अकेले। अंतर-बाहर एकाकी।

मन विकल हो उठा। कभी मन की इच्छाओं को तरह-तरह से महत्व देकर चरितार्थ किया करते थे। देह से हटकर शुद्ध चिंता की बात मन में कभी आई ही नहीं। अब सोच रहे थे कि—पहला व्यक्ति, समाज के लिए अमंगलकारी है ध्वंसकारी है; दूसरा दोनों के लिए मंगलकारी। मगर पानी सिर से ऊपर आ गया था। अब क्या हो? बड़ी मुश्किल से हाथ जोड़ लिए।

नमस्कार कहते-कहते तीसरा बेटा आ गया। गेरुआ धोती पहने, चादर डाले। मेधावी था, मगर कालेज के दिनों में संन्यासी बन गया। पांच-छह वर्ष पहले की बात है। उस समय दुर्योधन और सबने मिलकर तय किया कि यह कुलकलंक है। तबसे उन्होंने लज्जा में किसी के आगे नाम तक नहीं लिया। कोई चर्चा करता तो अपने को अपमानित महसूस करता।

आज उसे देख कुछ हिम्मत और सांत्वना भर गई। मगर यह सोचकर आश्चर्य हो रहा था कि ऐसा बेटा मेरे घर कैसे हुआ? सारी कुप्रवृत्तियों में कहीं एक हल्की-सी

सुप्रवृत्ति छुपी थी। मुझे तो कभी पता न लगा। अमरत्व यही है! मैंने क्या गलती की थी।

पिता को सहलाकर बेटा कहने लगा, "पिताजी! क्षमता, प्रभाव, ऊंचे पद, मान-सम्मान से पहले व्यक्ति का शोधन जरूरी है। वह जिसमें नहीं है, उसे साधारण बने रहना चाहिए। वरना व्यक्ति कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, वह समाज का घोर अमंगल करेगा।"

दुर्योधन का मन कह रहा था कि इसके आगे सारा कसूर, सारी कमजोरी खुलासा कर दूं...पर होंठ कांपकर रह गए। आंखें बह गईं। अस्थिर हो गए।

सहलाकर बेटे ने कहा—पिताजी, जो कहना चाहते हैं, समझता हूं। गलती कुछ नहीं। दैहिक क्रिया से जनमी इच्छा को महत्व देना ही अनीति है। जो अद्भुत है, जिसकी इच्छा में कोटि-कोटि ब्रह्मांड हर पल बनते-मिटते हैं, उनका चिंतन ही शुद्ध चिंतन है। आपने चिंतन नहीं किया। कोई बात नहीं। अब भी समय है। जीवन के अंतिम क्षण तक समय है।

दुर्योधन ने फिर एक बार बड़ी मुश्किल से हाथ उठाकर जोड़ लिए।

जीवन और जीविका

पहले अन्नमय कोष, फिर रसमय कोप, आगे ज्ञानमय कोप और तव है आनंदमय आत्मा। जीवन उस आनंदमय आत्मा की तलाश करता है। परंतु जीविका उसमें अंत कर देती है। जो जीवन और जीविका में सामंजस्य कर सका, उसके लिए जीवन चर्चा कला चर्चा है, आर्ट है। हर आर्ट स्वयं को आनंद देने के साथ औरों को भी आनंद देती है। जिसके जीवन में दोनों का सामंजस्य नहीं होता, वह कोई आनंद नहीं पाता, सरसों तेल में मिलावट कर कोठियां खड़ी करें, दान-पुण्य करें अथवा मानस यज्ञ करें। जो खुद आनंद नहीं पाता, वह औरों को आनंद या शांति देना नहीं चाहेगा। इस दृष्टि से धपड़सिंह एक श्रेष्ठ कलाकार है।

'धपड़सिंह' उसका नाम नहीं। वह तो अइंठू है। बड़े-बड़े लेखक-कलाकार उपनाम रखते हैं। चनाचूर वेचने का नाम उसने 'धपड़सिंह' रखा है। वह इसी नाम से कटक में प्रसिद्ध है।

उसके चनाचूर ने पहले आकृष्ट किया—खाने से नहीं, उसकी वेपभूपा-अंगभंगिमा और गीत गाने से। चौधरी बाजार चौराहे पर खड़े होकर आवाज लगाता—चना वनाए तर्रर्रर। इसको ले के जाना घर् र् र् र्। किसी अज्ञात कवि ने शार्दूलविक्रीड़ित छंद में पारंपरिक ढंग से जीविका शुरू की। बाद में धपड़सिंह गाते चले अपना महाकाव्य—

कहो भार्या को डार्लिंग। करो बाप को गुड मार्निंग॥
खाकर चाप कटलेट। होठों पर लगा सिगरेट
न भूलना चना मेरा। यह खांटी उड़ीसा तेरा ॥
इसमें भरा विटामिन। खा ले तो दुनिया रंगीन।
विटामिन प्रोटीन में भरपूर। बनाया चना चू र् र् र्...
चना चू र् र् र्...

मेघ गरजन की तरह र र् र् को गंभीर स्वर में खींचता। भीड़ भरे चौराहे पर सबसे ऊंची आवाज सुनकर लोग चकित हो उसे देखते।

धपड़सिंह आशु कवि ठहरा। जबान पर गीत। चनाचूर गीत में आधुनिक युद्ध की समस्या, बाढ़ की समस्या, नीतिशास्त्र मिलाकर महाकाव्य कह देते। प्रांजल सरल भापा, सहज सुंदर भाव। माथे पर गाढ़ा लाल साफा, राजपूती कायदे में ठाठ

से बंधा होता। माथे पर साफे के बीच नकली सोने का बड़ा ब्रोच। ब्रोच पर कलंगी लगी होती। बैंगनी रंग की सस्ती जापानी सिल्क के बूटेदार पंजाबी कुरते पर पीला नकली वेलवेट का हाथ से कटा फतवा, उसमें जरी का काम। गले में सस्ते सिल्क का छपाईदार रुमाल बंधा। गले में एक ओर गांठ लगी। गुलाबी रंग की रायल कपड़े की धोती, काबुली के ढंग से पहने हुए। पांव में हरे नागौरी जूते। हाथ में बड़ी घड़ी बंधी। कंधे से बड़ा झोला लटक रहा। झोले में एक बड़ा और एक छोटा टिन। बड़े से ठोंगे पर सदा धुआं निकलता रहे। चनाचूर को ताजा कुरमुरा बनाए रखने के लिए टिन में आग रहती। छोटे टिन में कागज और तरह-तरह के मसाले। चारों ओर लोगों की भीड़। तन्मय हो उसके बोल सुन रहे, चनाचूर ले रहे। धपड़सिंह ये सब अविराम जारी रखे रहते। हाथ से चनाचूर की बिक्री।

साइकिल से उधर जा रहा था सब्जी खरीदने। धपड़सिंह की वेशभूषा देखने, खासकर कविता सुनने रुक गया। तब वह बोली में गा रहा था—बाढ़ आई। फसल गई॥ जीवन भी गए। सब सच है॥ ऐसा हुआ। और भी होगा॥ फिर भी क्या परवा। पशु तो डरें। आदमी को क्यों डर॥ चनाचूर खा। चना चू र् र् र्!! मौज कर!!

इसी तरह समस्याओं की चर्चा और समाधान का उपाय बताकर चनाचूर बेच रहा था! तन्मय हो कुछ क्षण सुनने के बाद मैंने भी वहां दो पैसे के चनाचूर खरीदे। धपड़सिंह ने छोटे ठोंगे में दिया, ठोंगा खोल वहीं खड़े हो दो-चार दाने मुंह में डाले। वाह, चमत्कार! मुंह में लार भर गई। हड़बड़ाकर चारों ओर देखा, रुमाल से मुंह पोंछा। धपड़सिंह ने मेरी ओर देखकर मुस्काकर वह बात भी कविता में जोड़ दी। सब हंसे। मैं भी।

धपड़सिंह की बोली चलती रही। उसका चनाचूर खाने का मजा अकेले में नहीं लिया जा सकता। घर के सबको साथ लेकर खाना चाहिए। एक और तर्क है—वह भी कविता में है—यदि कोई रोज चनाचूर खाने का मन रोक न सके, उसकी अर्थनीति घर से कंट्रोल होती है, अधिक नहीं, दो पैसे के चनाचूर धपड़सिंह से खरीदने का आदेश घर से होगा। फिर वह गाने लगा—पुरुष स्वाधीन नहीं, स्वाधीन है नारी। बाहर की असहायता में छुपी शक्ति सारी। उसी से वह कंट्रोल करे मरद जात भारी। यह स्त्री स्वाधीनता, स्त्री शक्ति हर ले सारी॥ सावधान जनता सारी॥ मार-काट मच जाएगी इससे भारी॥ मरेगी जनता सारी॥...

पुरुष स्वाधीन नहीं, मैं समझ गया। घड़ी देखी, घंटा भर हो गया था। सब्जी लेना बाकी था। घरवाली बैठी देखती होगी। फिर आज दो पैसे फालतू खर्च कर डाले हैं। मन ही मन अतीत में भर गया। धपड़सिंह का आदेश मान दो पैसे का चनाचूर ले घर लौटा।

अंदर आते न आते श्रीमती चीखते हुए पास आ गई। कुछ बोलें, इससे पहले उनके अधर पर चुंबन (प्रेम में नहीं आत्मरक्षा में) रख दिया। वाक्य स्रोत रोक दिया।

संदेह में सिकुड़े होंठ खोल, दो दाने चनाचूर मुंह में डाल दिए। प्रतिक्रिया देखने में सहमा-सा इंतजार करने लगा। क्रोध से तमतमाती गृहिणी की भौंहें धीरे-धीरे प्रशस्त होने लगीं। मुख-विवर से कुर्रकुर्र शब्द निकला। तांबूल रंजित दंतपंक्ति विकसित होने लगी। अचानक झपटकर हाथ से ठोंगा ले लिया।

धन्य धपड़सिंह! नमस्कार तुम्हें! मन ही मन प्रणाम!

गृहणी ने हंसकर पूछा—खूब जोरदार! कहां से लाए? गर्व से कहा—कैसा लगता है? खोज-खाज कर लाया हूं। उस दिन गृहिणी ने दो या चार पैसों का हिसाब नहीं लिया।

अगले दिन बाजार थैला ले निकला। श्रीमती ने हिसाब बताकर कहा—छह पैसे लो। वो चनाचूर लाना! मुंह में चटकारा लगा है। फिर धपड़सिंह को नमस्कार किया! धन्य हो? धन्य तेरी भविष्यवाणी!!

तब से रोज छह पैसे अधिक धपड़सिंह के चनाचूर हेतु बजट में आ गए। धपड़सिंह से परिचय भी गहरा होता गया। मित्रता में बदल गया। कभी-कभी लोभ में पड़ बाजार से अधिक खा लेता। वह पैसा धपड़सिंह से उधार ले लेता। वह कोई आपत्ति नहीं करता। बल्कि जबरन दो-चार पैसों का ज्यादा दे देता। उधार बढ़ते-बढ़ते तीन रुपए हो गए। कर्ज चुकाने की क्षमता से अधिक हो गया, लज्जा में मैंने धपड़सिंह का बहिष्कार किया। उस राह गया ही नहीं। घरवाली चनाचूर की बात पूछती तो कह देता—भेंट नहीं हुई।

कई दिन हम नहीं मिले। बीच-बीच में इस पर विवाद भी हो जाता। गीत सुनने की इच्छा होती। मगर कटकी शोहदों के मुंह पर लगाम तो होती नहीं, इतने लोगों के बीच उधार मांग बैठे! उल्टा-सीधा कह दे...मैं डरकर उधर निकला नहीं। अपनी गरीबी पर गुस्सा करता। खुद से घृणा होने लगी।

बाजार में सुना धपड़सिंह बीमार है। वात ज्वर हुआ है। मन में बुरा लगा। तय किया—किसी तरह तीन रुपए लेकर पहुंचूंगा। जो मेरे गरीबी में प्रतिदिन पांच मिनट निर्मल आनंद देता आया, उसे बुरे समय में धोखा कैसे दूं? लज्जा हो आई।

रविवार! इस दिन चनाचूर अधिक बिकता है। जल्दी घर से निकलता है। दिन भर खोजकर एक आदमी से तीन रुपए उधार लेकर धपड़सिंह के घर पहुंचा। छोटी कोठरी। दरवाजा इतना नीचा, कि घर का कोई अंश बाहर न दिखे। अंदर जाकर आवाज दी।

वह अपना साज पहनते-पहनते बाहर आया। मुझे देख अचंभे में भर गया?—बाबू, आप! कितने दिनों से सोच रहा था। क्या चनाचूर अच्छा नहीं लगता? होता होगा...कितना कहा उसे ताजा मसाला देना, वह सुने नहीं। बासी मसाला देता है। बाबू...चनाचूर बिगड़ने पर मेरा मन दुःखी हो जाता है।

अंदर ऊंची आवाज में कहा—देख...बार-बार कहा तुझे...

मैंने रोका। अरे यार, चनाचूर तो जोरदार है। पूरा कटक गुलाम है इसका। बाजार में तेरी चर्चा कर रहे थे लोग। तुम न गया...

—मेरी छोड़िए। चनाचूर की बात कीजिए?

—तेरे चनाचूर को ही याद कर रहे थे।

सच! बाबू!—मेरा हाथ पकड़ अंदर ले गया। उन निष्पाप आंखों में चमक आ गई।

मैंने रोका—समय नहीं है मेरे पास। तुम्हारा उधार चुकाने आया था। दे न सका, माफ करना भाई।

धपड़सिंह ने हाथ पकड़ कहा—छिः बाबू! पैसा ही सब है? मैं क्या नहीं समझता कि क्यों नहीं दे सके। आइए चाय पीएं! हड़बड़ाकर घर में चटाई बिछाकर अंदर देखकर कहा, "देखो, मेरे चनाचूर के बड़े पारखी पधारे हैं। बाबू आप जैसे पारखी न हों तो बेचने में मजा नहीं।

मैं उसका चेहरा देख अचंभे में भर गया। दाहिना पांव मोटा हो गया। गाल धंस गए, आंखें सिकुड़ी। कहा—धपड़सिंह, तबीयत और सम्हलने दो, आराम कर लो।

हंसकर बोला—हमें विश्राम कहां? बाहर से लाएं तो चूल्हे पर जाए। कुछ दिन बड़ी कठिनाई में...

बरामदे से दो गिलास चाय रख स्त्री ने कहा—झूठ! इसकी कमाई से जमाकर रखे हैं। महीना भर चल जाए। सात दिन हुआ कलह करता है। बाजार बेचने जाऊंगा। किसी तरह रोका। आज झगड़ गाली दे निकल रहा है। सुबह से फुरसत नहीं। चनाचूर बनाने में लगा है। खाना-पीना बंद है। पंद्रह दिन हुए पेट का दर्द है। क्या कहूं...मेरा भाग...

धपड़सिंह ने कहा—सच, बाजार गए बिना कैसे रहूं? गीत बोल बेचने में अच्छा लगा। पांच आदमी खाकर आनंद पाते हैं। छाती फूल उठे। वरना पेट भरने की क्या चिंता!

आपत्ति की—पर तबीयत ठीक नहीं!

— हां, बाबू! आराम किए बिना साल-दो साल और निकाल लूंगा। मरना तो है एक दिन। लोग मेरा चनाचूर खा आनंद में कह दें—धपड़सिंह का चनाचूर जैसा कोई नहीं बनाता, तब तो युगों में जी गया!

मैं चुपचाप चाय पीने लगा। समय हो गया, वह झटपट कपड़े पहनने लगा। ट्रंक में सहेजकर रखा कपड़ा निकालकर पहन रहा था। दीवार पर टंगे आईने में देख साफा ठीक करने लगा। पहनकर जब खड़ा हुआ—रूप ही बदल गया। चनाचूर का थैला झुलाकर आईने के पास फोटो के आगे सिर झुका निकल पड़ा।

फोटो देवी-देवता का न था। एक आदमी—उसी की तरह की वेश-भूषा थी।

एक पाटे पर फोटो था, दोनों ओर धूपदान और उसमें अगरबत्ती जल रही थी।

कुतूहल में पूछा—किसे हाथ जोड़े? देवता?

वह हंसकर बोला—गुरुदेव हैं! उनका पहला नाम तो मैं नहीं जानता। चनाचूर बेचने का नाम कविसिंह था उन्होंने मेरा नाम रखा 'धपड़सिंह'। कुछ समय बनारस में था। वहीं सीखा। क्या बोल थे उनके! जवानी गीत बनाते रहते। एक बार सरकार के खिलाफ ऐसे गीत बनाए कि लोग पागल हो उठे! बहुत पहले। बहुत सोचते। सब मुझे सिखा गए। उनकी कृपा से यह गुण है। चलो चलें। आज फुटबाल का खेल है। स्टेडियम जाना है।

फिर गुरुदेव को प्रणाम किया। घर से निकल कान तक खिंची मूंछ पर बल दिया। चारों ओर निगाह दौड़ाई।—कौन कहेगा कि यह महीने भर का मरीज है! चना बनाए त र् र् र्! सुनकर लगा नेपोलियन युद्ध को जा रहे हैं। अथवा शिकागो हाल में विवेकानंद भाषण दे रहे हैं।

धपड़सिंह बिना मुझे देखे चल पड़ा।

कुछ दिन बीत गए। घरवाली के बजट में फिर चनाचूर को जगह मिली। पंद्रह दिन बाद जाकर देखा—धपड़सिंह नहीं आया। फिर तबीयत बिगड़ी लगती है। तुरत घर गया।

स्त्री मुझे देख रो पड़ी। बिस्तर पर पड़ा छटपटा रहा है। पेट पर हाथ फिरा रहा है। सहलाकर पूछा—क्या बात है?

क्षीण स्वर में धपड़सिंह बोला—पेट...

उसकी स्त्री ने कहा—कितना कहा चनाचूर न बेचो। कोई और धंधा कर लो। माना नहीं। चनाचूर के टिन की आग पेट से सटकर रही, पेट की हालत बिगड़ गई है...

धपड़सिंह ने मेरी ओर देखा। आंखें बह चलीं। होंठ थरा रहे थे। आश्वस्त होकर कहा—मरना पड़े...चनाचूर बेचना नहीं छोड़ सकूंगा। इसमें पैसे ही नहीं कमाता, आनंद भी पाता हूं। पर बाबू, दुःख इतना है कि मेरे बाद चनाचूर का नाम डूब जाएगा।...मरूंगा, इसका दुःख नहीं है। पर यह चनाचूर लोग खा नहीं सकेंगे मेरे बाद। बेटे को कहा इलम ले ले। नहीं लिया—चपरासी बनने दौड़ रहा है।

मेरी आंखें छलछला आईं। उठकर आया डाक्टर बुलाने। डाक्टर आया। देखकर मुझे एक तरफ बुलाकर कहा—लिवर सड़ चुका है। अधिक दिन नहीं...दो-तीन...

दो दिन भी नहीं गए। रात एक बजे करीब धपड़सिंह ने गुरुदेव को देख आखिरी प्रणाम किया। आखिरी सांस छोड़ी।

धरती से एक कलाकार चला गया।

धपड़सिंह की देह चिता पर लिटा दी गई। बेटे ने मुखाग्नि दी। मशान की

तेज हवा से शीघ्र लपटें उठने लगीं।

चिता की चड़चड़ाहट में सुनाई पड़ रहा था वह महाकाव्य—चना बनाया च ऱ् ऱ् ऱ्...।

इसको ले के जाना घ ऱ् ऱ् ऱ्...!!

□□□

मुद्रक : हाई स्पीड ऑफसेट, ए–14, डी.एस.आई.डी.सी. प्लाट,
झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली–110095

बामाचरण मित्र की कहानियां पुस्तक लेखक की चौबीस प्रतिनिधि कहानियों का ओड़िया से हिन्दी अनुवाद हैं। गहन चिंतन और जीवन-प्रेमी स्रष्टा के रूप में स्वातंत्र्योत्तर ओड़िया कथा साहित्य में बामाचरण मित्र (1915-1975) का उल्लेखनीय योगदान है। इनकी कहानियों में अंतर्जगत के तत्व, दर्शन, मानवीय करुणा और आनंद-विषाद की रसघन अभिव्यक्ति है। ये कहानियां जीवन संग्राम के विभिन्न पक्षों से पाठकों को गहन आत्मीयता के साथ जोड़ती हैं और मार्जित रुचि एवं विचार की आत्मसत्ता को आलोकदीप्त करती हैं। सन् 1950 में इनकी पहली कहानी 'कीर्तियश्य' प्रकाशित हुई। कहानियों में ललित निबन्ध के तत्व भी पर्याप्त दिखते हैं। इनकी कहानियों के कुछ महत्वपूर्ण संकलन हैं : 'असीम', 'बट महापुरुष', 'महापुरुष बाग' आदि।

संकलक **शत्रुघ्न पांडव** (1955) ओड़िया साहित्य की आधुनिक धारा के प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। मूलतः कवि होते हुए भी इन्होंने ओड़िया आलोचना में अपनी अच्छी पहचान बनाई। वृत्ति से ये ओड़िया भाषा साहित्य के अध्यापक हैं। मनोज दास की कहानियों पर इन्होंने डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। 'साबरमती' इनकी ओड़िया कविताओं का चर्चित संकलन है।

शंकर लाल पुरोहित ओड़िया-हिन्दी के श्रेष्ठ अनुवादक के रूप में ख्यात हैं। अनुवाद कार्य के लिए कई प्रांतीय-राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित हैं। इनके द्वारा अनूदित कई पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिससे ओड़िया-हिन्दी के बीच एक व्यापक सेतु बना है।

आवरण : परेश चौधुरी की पेंटिंग पर आधारित

₹ 60.00
ISBN 81-237-4083-2



12130627



NBT INDIA
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया